कुरुक्षेत्र

नवम्बर : 1977 मूल्य : 50 पैसे

भारतीय कृषि प्रदर्शनी 1977 और ग्राम विकास

समय आ गया है ग्रामवासिनी मां को याद करने का

एक समय था कि जब हमारे देश में खेती को सर्वोच्च महत्व दिया जाता था और उसे उत्तम धंधा समझा जाता था। लेकिन धीरे-धीरे अंग्रेज शासकों के काल में खेती का महत्व और स्तर गिरता गया। फलस्वरूप देश की समृद्धि की रीढ़ ग्रामीण अर्थव्यवस्था का ढांचा बिगड़ता गया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने बहुत पहले ही इस बात की आवश्यकता समझ ली थी कि भारत का भविष्य गांवों में ही है और उन्होंने जन-जन को चेताया था कि भारत मां ग्रामवासिनी है। ग्रामों की उन्नति से भारत मां का रूप संवर सकता है। किन्तु पश्चिम की वैभव-बहुल मशीनी सभ्यता की चकाचौंध से प्रभावित अनेक तथाकथित आधुनिक लोग इस चिरन्तन सत्य को मानने को तैयार न थे। उनकी दृष्टि में खेती से कहीं अधिक महत्वपूर्ण बड़े-बड़े उद्योग थे।

गांवों के शिक्षित युवकों से उम्मीद की जाती थी कि वे अपने ज्ञान का उपयोग खेती का स्तर ऊंचा करने और ब्रिटिश-शासन काल से उपेक्षित ग्रामोद्योगों को पुनर्जीवित करने में अपना योग देंगे। दुर्भाग्यवश वे भी शहरों के सुविधापूर्ण जीवन के आकर्षण में फंसकर अपना दायित्व भूल गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अपने देश को संवारने, आत्मनिर्भर बनने और आगे बढ़ने के बड़े पैमाने पर प्रयास शुरू हुए। खेती और सिंचाई की समस्याओं की ओर भी ध्यान गया। पंचायती राज और सामुदायिक विकास की योजनाओं को अमली जामा पहनाने के लिए कदम उठाए गए। पर ज्यादा ध्यान कल-कारखाने खड़े करने पर दिया गया। शिक्षा का भी प्रसार बढ़ा, किन्तु जो भी सुविधाएं बढ़ीं उन्हें आबादी की अंधाधुंध बढ़ोतरी ने निगल लिया।

कल-कारखाने सबको रोजगार नहीं दे सकते थे, इसलिए बेरोजगारी बढ़ी। व्यावसायिक शिक्षा के अभाव में शिक्षित बेरोजगारों की तादाद बढ़ी। शिक्षित युवाओं में असंतोष बढ़ा।

इन सब समस्याओं का मूल कारण यह था कि हम अपनी ग्रामवासिनी मां को भूल बैठे थे। यह भूल बैठे थे कि असली भारत गांवों में है। यह भूल गए थे कि मामूली समझे जाने वाले ग्रामोद्योग बड़े उद्योगों की तुलना में कहीं अधिक रोजगार पैदा कर सकते हैं। इधर आशा की एक नई किरण दिखाई दी है। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि अब प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई के दिशानिर्देश में छोटे किसानों और खेत मजदूरों की स्थिति सुधारने और ग्रामोद्योगों को बढ़ावा देने के लिए सरकार कृत संकल्प है। कुछ राज्य सरकारों ने भी विशेष कदम उठाए हैं। इनमें राजस्थान सरकार विशेष रूप से प्रशंसा की पात्र है, जिसने निर्धन ग्रामवासियों के उत्थान के लिए 'अन्त्योदय' योजना शुरू की है।

इस महीने प्रगति मैदान में कृषि प्रदर्शनी एग्री-एक्स्पो-77 भी शुरू हो रही है, जो 13 दिसम्बर तक चलेगी। इस प्रदर्शनी में यह दिखाने का प्रयास किया जाएगा कि खेती हमारे देश का एक प्रमुख धंधा ही नहीं है, बल्कि लोकतंत्र के समान ही जीवन पद्धति है। इस प्रदर्शनी में आधुनिक भारत में कृषि के क्षेत्र में हुई प्रगति को ही नहीं, बल्कि ग्राम्य जीवन की विशेषताओं और सौन्दर्य की झलक भी प्रस्तुत की जाएगी। साथ ही ग्राम्य जीवन में जो नई चेतना आई है, ग्रामीण जीवन को सुधारने के लिए जो प्रयास किए गए हैं और किए जा रहे हैं, उनकी झलक भी पेश की जाएगी।

आशा की जाती है कि इस प्रदर्शनी से लाखों दर्शकों को ग्रामवासिनी भारत मां के असली स्वरूप के दर्शन होंगे। वैसे भी अब समय आ गया है कि हम जान लें कि भारत मां का निवास स्थान ग्रामों में है और ग्रामों तथा ग्रामोद्योगों की उन्नति से ही देश की उन्नति होगी।

कुरुक्षेत्र के पाठकों को

दीपावली

की

शुभकामनाएं

सम्पादक : देवेन्द्र भारद्वाज

उपसम्पादक : पारसनाथ तिवारी
शशि चावला

आवरण पृष्ठ : जीवन अडालजा

दूरभाष : 382406

एक प्रति 50 पैसे ● वार्षिक चन्दा 5.00 रुपये

कुरुक्षेत्र

वर्ष 23 कार्तिक 1899 अंक 1

इस अंक में **पृष्ठ संख्या**

भारतीय कृषि प्रदर्शनी 77—ज्ञातव्य तथ्य 2

छोटे किसानों के लिए योजनाएं बनें 4
मोरारजी देसाई

ग्रामीण विकास में सहकारी समितियों की भूमिका 6
सुरजीत सिंह बरनाला

पर्वतीय क्षेत्रों का विकास 8
एच० वी० एन० मूर्ति

गरीबों की मदद के लिए राजस्थान का अन्त्योदय कार्यक्रम 10
पारस नाथ तिवारी

ज्योति-पर्व (कविता) 11
मोहन जोशी 'मस्ताना'

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार सम्पर्क सड़कें 12
विनय कुमार

भारत में पंचायती राज 14
डा० प्रेम प्रकाश संगल

सूखे के खिलाफ लड़ाई 19
जगदीश प्रसाद शर्मा

ग्रामीण समस्याओं से मोर्चा 23
बेनी कृष्ण शर्मा

नई औद्योगिक नीति में गांव और लघु उद्योग 29
आई० सी० पुरी

रेगिस्तान का काष्ठकला उद्योग 32
भूरचंद जैन

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम 34

देहाती खेलों में दिल्ली ने मार्ग दिखाया 36
हरिश वर्मा

जनसेवा में अग्रणी हमारी रेलें 38
सुभाष चन्द्र शर्मा

साहित्य-समीक्षा आवरण III

गांव की गोरी (कविता) आवरण III
बनवारी लाल ऊमर वैश्य

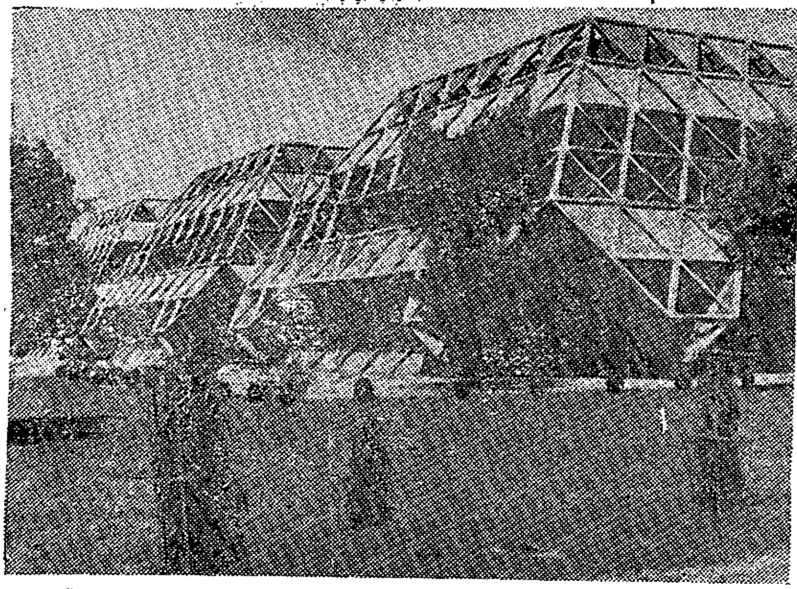

'हाल्स आफ इंडस्ट्रीज' में भी कृषि विकास की झांकी मिलेगी

भारतीय कृषि प्रदर्शनी 77

ज्ञातव्य तथ्य

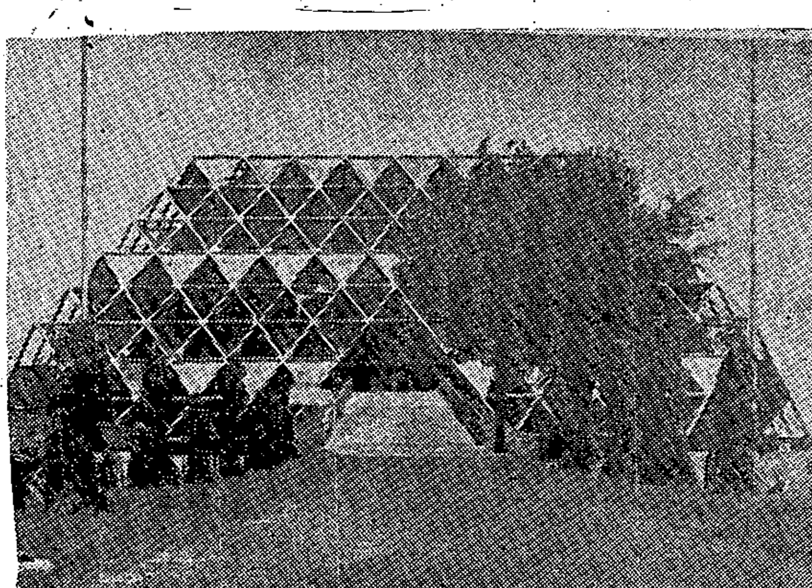

प्रगति मैदान का स्थायी आकर्षण 'हाल आफ नेशन्स'

भारतीय कृषि प्रदर्शनी (एग्री-एक्स्पो-77) 13 नवम्बर से 13 दिसम्बर, 1977 तक नई दिल्ली के प्रगति मैदान में होगी। प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई 13 नवम्बर को अपरान्ह में इसका उद्घाटन करेंगे।

इसमें सोवियत संघ, जापान, हंगरी और अफगानिस्तान भी भाग ले रहे हैं।

देश के 17 राज्यों, 5 केन्द्र शासित प्रदेशों और 5 केन्द्रीय मंत्रालयों के अतिरिक्त इसमें 15 निर्यात संवर्धन परिषदें, 7 जिन्स बोर्ड, सरकारी क्षेत्र के 8 प्रतिष्ठान और 15 प्राइवेट फर्में भाग ले रही हैं।

प्रदर्शनी के दौरान विभिन्न राज्य सरकारें अपने "राज्य दिवस" मनाएंगी। मिजोरम का राज्य दिवस 18 नवम्बर को, पश्चिम बंगाल का 20 नवम्बर को, उत्तर प्रदेश का 21 नवम्बर को, तमिलनाडु का 22 नवम्बर को, आसाम का 23 नवम्बर को, कर्नाटक का 25 नवम्बर को, सिक्किम का 26 नवम्बर को, गुजरात का 27 नवम्बर को, केरल का 30 नवम्बर को, नागालैंड का 1 दिसम्बर को, पांडिचेरि का 2 दिसम्बर को, पंजाब का 3 दिसम्बर को, महाराष्ट्र का 5 दिसम्बर को, आंध्र प्रदेश का 6 दिसम्बर को, हरियाणा का 8 दिसम्बर को, राजस्थान का 9 दिसम्बर को, उड़ीसा का 10 दिसम्बर को, गोआ का 11 दिसम्बर को और मध्यप्रदेश का 12 दिसम्बर को मनाया जाएगा।

प्रत्येक राज्य दिवस के दौरान लोक-गीत, लोक-नृत्य, संगीत आदि के कार्यक्रम रहेंगे तथा सम्बद्ध राज्य की परम्परागत दस्तकारियां आदि प्रदर्शित की जाएंगी।

प्रदर्शनी का एक विशेष आकर्षण "बैलगाड़ी चौक" होगा, जिसमें परम्परागत और आधुनिक दोनों प्रकार की बैलगाड़ियां प्रदर्शित की जाएंगी।

ग्रामीण भारत खंड में राजस्थान की बन्धनी, कश्मीर के तांबे के बर्तन, बिहार की चूड़ियां, कोल्हापुर की चप्पलें, हरियाणा के धातु के बर्तन, आसाम की मुगा सिल्क आदि हस्तशिल्प की चीजें दर्शकों को देखने को मिलेंगी।

इसी खंड में नीलगिरि की टोडा झोंपड़ी, सिक्किम की झोंपड़ी, आसाम की नेफा राभा झोंपड़ी आदि भी होंगी।

प्रदर्शनी के दौरान रामलीला, कृष्ण लीला, नौटंकी, नृत्य-नाटक आदि सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होगा। पंजाबी नाटक भी प्रस्तुत किए जाएंगे। इन कार्यक्रमों को भारतीय कला केन्द्र, नया थियेटर, नाट्यशाला, लिटिल बैले ट्रूप, नाट्य बैले सेन्टर, रविगीतिका आदि संस्थाएं पेश करेंगी।

प्रदर्शनी में हर दिन हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं की फिल्में दिखाई जाएंगी। चुने हुए वृत्त चित्र भी दिखाए जाएंगे।

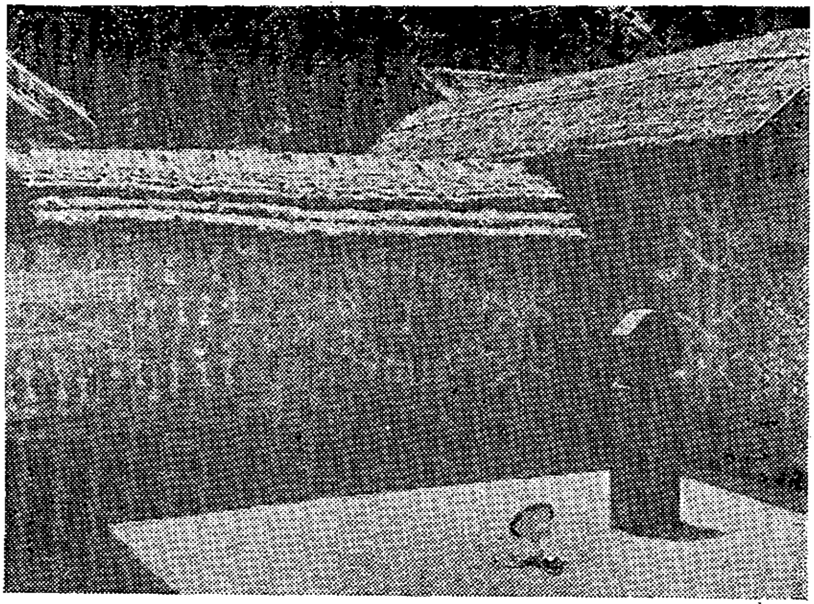

ग्रामीण विकास खंड में महाराष्ट्र की झोंपड़ी

इस प्रदर्शनी को दिखाने के लिए विभिन्न राज्यों से लगभग 5 हजार किसानों को दिल्ली लाया जाएगा।

पशु पालन खंड में विभिन्न राज्यों के बढ़िया नस्ल के पशु प्रदर्शित होंगे। इस खंड में दुधारू पशु, मुर्गी, भेड़, सूअर आदि होंगे।

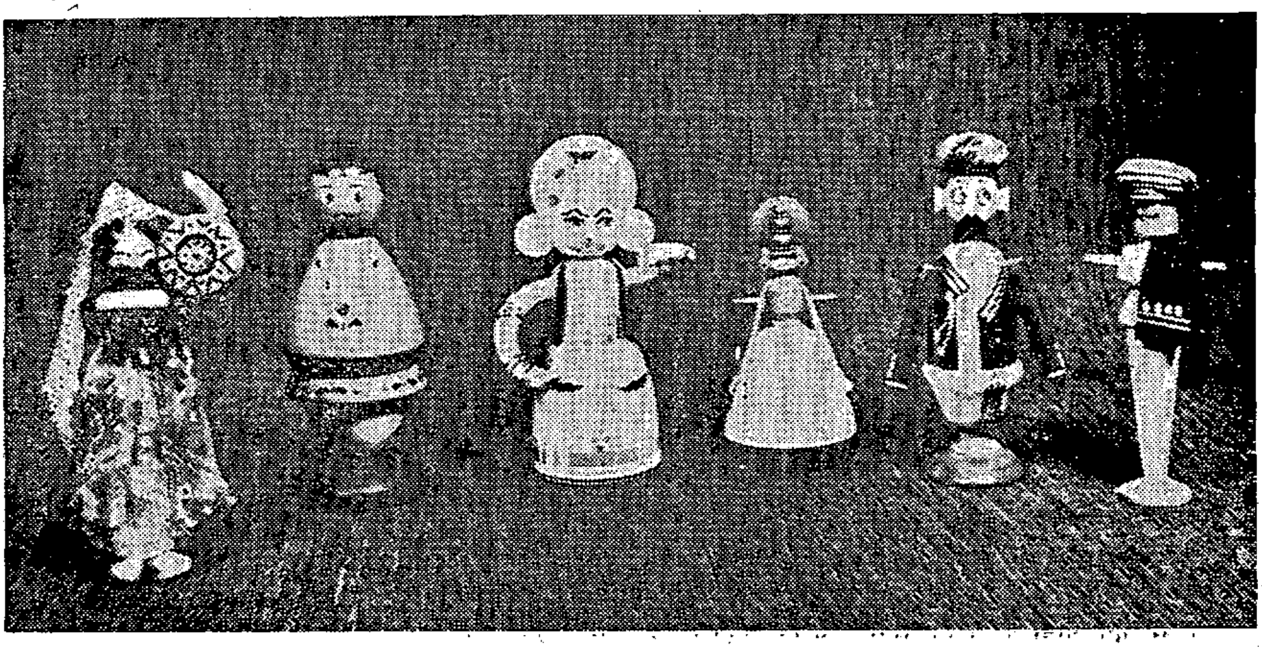

प्रदर्शनी में हस्तशिल्प के आकर्षक नमूने भी दर्शकों का मनोरंजन करेंगे

छोटे किसानों के लिए योजनाएं बनें

-- मोरारजी देसाई --

[प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने 10 अक्तूबर को नई दिल्ली में एशियाई क्षेत्र कृषि ऋण संगठन की प्रथम महासभा और कृषि ऋण तथा सहकारिता संबंधी तीसरे एशियाई सम्मेलन का उद्घाटन किया। इस अवसर पर प्रधान मंत्री ने ग्रामों के समग्र विकास पर बल दिया और छोटे किसानों की उन्नति के लिए कम खर्च की तकनीकी तथा आर्थिक योजनाएं बनाने का सुझाव दिया। प्रधानमंत्री के उक्त भाषण के महत्वपूर्ण अंश यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं।]

एशियाई देशों में विश्व की 55 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। हमारे अधिकांश एशियाई देशों की स्थिति में समानता है और उससे पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता पर और जोर पड़ता है। ग्रामीण आबादी में से अधिकतर लोगों की प्रति व्यक्ति आमदनी काफी कम है। इन देशों में कृषि प्रमुख उद्योग है और राष्ट्रीय आय का मुख्य साधन है। अनुमान लगाया गया है कि इस क्षेत्र के आठ देशों में लगभग 45 प्रतिशत ग्रामीण आबादी गरीबी से नीचे की रेखा के अंतर्गत गुजारा करती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन देशों में विकास नीतियों को मुख्य रूप से समाज के कम सुविधा-प्राप्त वर्गों की ओर केन्द्रित किया जाना चाहिए और उनकी भलाई के कामों पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए। यह हम सबके हित की बात है कि हम आपस में मिलें-जुलें, अपने अनुभवों का आदान-प्रदान करें और सुधार के समुचित उपाय निकालें। उन देशों की अपेक्षा जो पहले से ही अच्छी तरह विकसित हैं, हमें आपस में ही एक-दूसरे से बहुत कुछ सीखने की जरूरत है। यदि विकासशील देश टेक्नालाजी और तकनीकी जानकारी के अपने साधन इकट्ठा कर लें तो वे एक-दूसरे की अधिक मदद कर सकते हैं और विकसित देशों पर आजकल जो उनकी निर्भरता है, वह काफी कम हो सकती है।

बहुधा हम गांवों के गरीब लोगों को परोपकार और दान का पात्र मानकर उनकी ओर देखते हैं, उन्हें देश के बराबर के नागरिकों की तरह राष्ट्रीय उत्पादन में हिस्सेदारी का अधिकारपूर्ण दावेदार नहीं मानते। हमारे पहले के बहुत से विकास कार्यक्रमों में अप्रत्यक्ष लाभ अथवा किसी न किसी रूप में प्रोत्साहन की व्यवस्था रखी गई है। पर अब जबकि हम निर्धन वर्ग को लाभ पहुंचाने के प्रत्यक्ष कार्यक्रम शुरू कर रहे हैं, उनके बारे में आर्थिक आधार पर पूछताछ की जा सकती है। अधिक सुविधा प्राप्त वर्गों को मुफ्त अथवा रियायती सेवाओं के साथ टेक्नालाजी की नवीनतम प्रगति प्राप्त करने में सुविधा रहती है और इस प्रकार ये शीघ्रता से लाभ उठाने में सफल रहेंगे। अब हमारा यह प्रयास रहना चाहिए कि कम से कम समय में इस असंतुलन को दूर कर सकें। आखिरकार हम अपनी जनसंख्या के 70 प्रतिशत भाग की अनदेखी करके थोड़े से लोगों की समृद्धि नहीं खरीद सकते।

देहातों में ज्यादातर छोटी जोतों की भरमार है। इस देश में 7 करोड़ 4 लाख 90 हजार जोतें हैं। इनमें से 4 करोड़ 91 लाख, जो कि कुल का लगभग 70 प्रतिशत हैं, आकार में दो हेक्टेयर (5 एकड़) से भी कम हैं। एक हेक्टेयर से भी कम की जोतें कुल का 50.6 प्रतिशत हैं। दो हेक्टेयर से कम की जोतें कुल क्षेत्र का 20.8 प्रतिशत ही हैं जिसका अर्थ यह है कि लगभग 80 प्रतिशत कृषि भूमि खेती करने वाली जनसंख्या के 30 प्रतिशत भाग के पास है।

इससे आप अंदाज लगा सकते हैं कि हमारी ग्रामीण जनसंख्या को कैसी सामाजिक विषमता का सामना करना पड़ रहा है। इससे कम लागत की और छोटे खेतों की टेक्नालाजी का विकास करने की आवश्यकता पर भी प्रकाश पड़ता है। जब तक कि छोटे खेत के आकार में सुधार लाकर आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन नहीं लाया जाता तब तक ऐसा करना ही होगा।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने बार-बार इस बात पर जोर दिया था कि हमारे देश की विशालता, जनसंख्या की विशालता, देश की स्थिति और जलवायु को देखते हुए हमारी नियति ग्रामीण सभ्यता में है। उन्होंने कहा था—

"मैं ऐसे भारत के निर्माण के लिए कार्य करूंगा जिसमें गरीब से गरीब भी यह अनुभव करेगा कि यह उनका देश

है और जिसके बनाने में उनकी आवाज सुनी जाती है। मैं एक ऐसा भारत बनाना चाहता हूं जिसमें कोई उच्च वर्ग का होगा न निचले वर्ग का, एक ऐसा भारत जिसमें सभी समुदाय के लोग हिल-मिल कर प्यार से रहेंगे।"

उनके सपनों का भारत बनाने के लिए बड़ी संख्या में विद्यमान छोटे और मामूली किसानों, साधारण कारीगरों और भूमिहीन मजदूरों को भार समझने के बजाय उनको राष्ट्रीय आर्थिक परिसम्पत्ति के रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए। उन्हें जब समुचित क्रय-शक्ति सुलभ हो जाएगी तो वे औद्योगिक विकास के लिए स्थिर आर्थिक आधार प्रदान कर सकेंगे। कृषि उत्पादन में व्यापार के प्रतिकूल शर्तों के जरिए एशियाई क्षेत्र के विकासशील देशों के शोषण का यह भी मूल कारण है। अतः हमारी सरकार को व्यापक ग्रामीण विकास की नीति के प्रति कृत-संकल्प रहना होगा। इस नीति में ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों और क्रमशः उन्हें खुशहाल बनाने के कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया जाएगा। ग्रामीण विकास के प्रति इस नीति की परिधि में कृषि, पशुपालन, वन, मछली पालन, डेरी और मुर्गी पालन के क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने तथा कुटीर और ग्रामोद्योगों का पुनर्गठन शामिल है। ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार के अवसर उपलब्ध करने के अलावा हमें गांवों में सार्वजनिक सेवाओं और बुनियादी सेवाओं की व्यवस्था करने के व्यापक सवाल का भी हल निकालना है। 40 करोड़ से अधिक की जनसंख्या वाले 5,50,000 गांवों की सेवा सहायता करने की समस्या आयोजन और प्रशासन के लिए एक विराट काम है। अगर इस देश को धीरे-धीरे कल्याणकारी राज्य की ओर आगे बढ़ाना है तो इस चुनौती का सामना करना ही होगा।

इस बड़े पैमाने पर हाथ में लिए जाने वाले कार्यक्रम के लिए बड़ी मात्रा में साधन जुटाने होंगे। ग्रामीण जनसंख्या के लिए इस प्रकार कृषि ऋण बुनियादी आवश्यकता है। परिभाषा के अनुसार ऋण वह राशि होती है, जिसकी थोड़े या लम्बे समय के बाद प्राप्त कर्ता से वसूली की जा सकती है। इसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग उत्पादन कार्यक्रमों की सहायता करना है जिससे ऋण लेने वाले को अतिरिक्त आमदनी हो और वह ऋण को चुकता कर सके। अतीत में संस्थागत ऋण आमतौर पर साख कसौटी के अनुसार दिया गया है। आवश्यक रूप से यह ऋण सहायता प्राप्त करने के हकदार गरीबों को नहीं मिला, बल्कि सम्पन्न लोगों को मिला। हमें इस रुख को मोड़ना होगा और संस्थागत साधनों से कमजोर वर्ग की जरूरतों को पूरा करने पर ध्यान देना होगा। ऋण के गैर-संस्थागत साधन अपने दृष्टिकोण में अनैतिक रवैया अपनाते रहे हैं। लेन-देन में वे इस सिद्धांत का पालन नहीं करते और उनका स्वभाव डर पैदा करने वाला होता है। ग्रामीण जनता को इस प्रकार के ऋण दाताओं और एजेंसियों से छुटकारा दिलाने के लिए संगठित प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

सहकारी आंदोलन चलाने का मुख्य उद्देश्य सीमित साधनों वाले व्यक्तियों की सहायता करना और उन्हें साहूकारों के खतरनाक तौर-तरीकों से बचाना था। 1904 के कानून में, जिसके आधार पर भारत में सहकारिता आंदोलन की शुरूआत हुई, मुख्य उद्देश्य है कि खेतिहरों, कारीगरों, और सीमित साधनों वाले व्यक्तियों के बीच बचत करने, अपनी सहायता आप करने और सहकारिता की भावना बढ़ाने को प्रोत्साहन देना है। सहकारी ऋण समितियों ने, जिनकी मूलरूप में स्थापना ऐच्छिक संगठनों के रूप में की गई थी, निश्चित रूप से काफी प्रगति की है। 1951 से 1971 तक के दो दशकों में संस्थागत ऋणों में सहकारी समितियों का योगदान सात गुना बढ़ा है। फिर भी हमें अभी काफी कुछ करना है। हमें इस प्रकार के ऋण में प्रति वर्ष 30 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य सामने रखकर काम करना है ताकि किसानों के लिए उपलब्ध संस्थागत ऋण की मात्रा अगले तीन वर्षों में बढ़कर दुगनी हो जाए। अगर हम इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी व्यवस्था को सुचारू रूप दे सकें तो हम अपनी ग्रामीण जनसंख्या को अपने साधनों पर निर्भर रहने के योग्य बना सकते हैं जो साहूकारों के मोहताज नहीं होंगे।

मैं समझता हूं कि कई एशियाई देश कमजोर वर्ग के लोगों को ऋण पहुंचाने के लिए विभिन्न तरीकों का परीक्षण कर रहे हैं। फिलीपीन में मैसागाना में 1973-74 से 99 कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जिनमें मुख्य जोर ऋण सुलभ करने पर है। इंडोनेशिया में फसल सघनीकरण कार्यक्रम 1967 में शुरू किया गया है जिसे 1971 में फिर से संगठित किया गया। मलयेशिया में नई एकीकृत कृषक सहकारी समितियां जून, 1976 के बाद बनाई गई हैं। श्रीलंका में सरकार ने कृषि उत्पादकता समितियां स्थापित करने का निश्चय किया है। एशियाई देशों में कई विशिष्ट संस्थाएं भी संगठित की गई हैं। हमारे भी देश में सहकारी समितियों के आधार को सक्षम, बहुद्देशीय इकाइयों के रूप में बनाने का विशाल कार्यक्रम हाथ में लिया गया है। इनमें से कुछ समितियों को कृषक सेवा समितियों के रूप में संगठित किया जाएगा।

70 वर्ष से भी अधिक समय से सहकारी ऋण संस्थाओं के होते हुए और ग्रामीण ऋण उपलब्ध करने में व्यावसायिक बैंकों के बढ़ते हुए योगदान के बावजूद भारत में कुल ग्रामीण ऋण का 70 प्रतिशत अब भी गैर-संस्थागत साधनों से प्राप्त होता है। यह बात नवीनतम ऋण निवेश सर्वेक्षण के अनुसार कही जा सकती है। गैर-संस्थागत अथवा अनौपचारिक व्यवस्था बहुत ही लचीली है और ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों को आसानी से सुलभ है। इस व्यवस्था में खराबी यह है कि इसमें बहुत ही शोषण होता है और साहूकार

[शेष पृष्ठ 13 पर]

ग्रामीण विकास में सहकारी समितियों की भूमिका

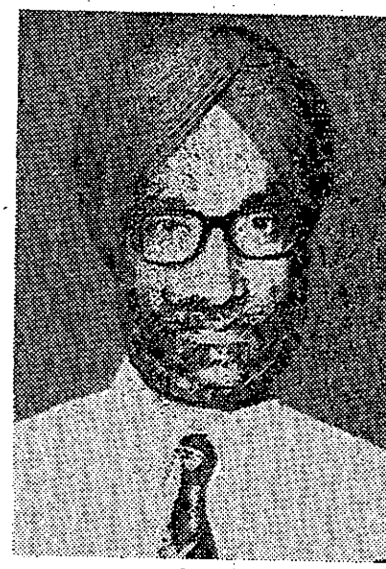

—सुरजीत सिंह बरनाला—
केन्द्रीय कृषि और सिंचाई मंत्री

भारत जैसे देश में जहां आयोजन का मुख्य उद्देश्य तेजी से आर्थिक विकास हो तो उसमें सम्पत्ति और आय के बीच असमानता में कमी, अवसरों की समानता, गरीबी उन्मूलन तथा देश के अधिकतम लोगों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने जैसी कुछ बातों पर अधिक से अधिक ध्यान देना होगा। संतुलित आर्थिक विकास का उद्देश्य समतावादी समाज की स्थापना होना चाहिए जिसका विकास सामाजिक न्याय पर आधारित हो।

इन उद्देश्यों को पूरा करने में सहकारी ढंग के संगठन तुरन्त सहायता पहुंचा सकते हैं। लगभग सभी न्याय संगत आर्थिक गतिविधियां एक सहकारी संस्थान के ढंग पर संगठित की जा सकती हैं। विकेन्द्रीकृत आर्थिक इकाइयों के संगठन के लिए भी सहकारी ढांचा सुविधाजनक है और साथ-साथ प्रत्येक सदस्य भी उचित स्तर पर उत्पादन करने के लिए अपने-अपने साधनों को सहकारी समितियों के माध्यम से एक स्थान पर इकट्ठा कर सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में जहां उत्पादन इकाइयां स्वाभाविक रूप से छोटी, अधिक और बिखरी हुई हैं, वहां तब तक सार्थक रुप से कोई आर्थिक कार्यक्रम नहीं चलाया जा सकता जब तक कि आपसी मदद की भावना के आधार पर व्यक्तिगत प्रयास न किए जाएं। इस प्रकार सहकारी प्रणाली में संस्थागत ढांचे की व्यवस्था है तथा इससे समाज के कमजोर वर्गों और छोटे उत्पादकों को विकास की मुख्य धारा में शामिल करने में सहायता मिलती है, ताकि वे आर्थिक विकास के लाभ के भागीदार बन सकें।

इसलिए सहकारी ढंग के संगठन में आम आदमी के लिए स्वतन्त्रता और अवसर का लाभ तो है ही, साथ ही व्यापक प्रबन्ध और संगठन का भी लाभ उसे मिलता है। ऐच्छिक प्रयास, जन सहयोग, सामाजिक नियन्त्रण, स्थानीय लोगों के उत्साह और साधनों का लाभ उठाने और इन सबसे ऊपर विभिन्न आर्थिक मांगों का संस्थाकरण, विभिन्न आवश्यक वस्तुओं की मांग और पूर्ति को प्रतिबिम्बित करने जैसे कई अन्य कारणों से भी सहकारिता के आदर्शों और सरकार के योजना उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद मिलती है।

सहकारियों के विरूद्ध समय-समय पर की जाने वाली शिकायतों, उनके कार्यों के बारे में तथा जनता की आशाओं के अनुकूल काम करने में तथाकथित असफलता के विरोध में उठाई जाने वाली आवाजों के बावजूद कृषि, पशुपालन मछलीपालन, आवास, आवश्यक वस्तुओं के सार्वजनिक वितरण जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों तथा चीनी, रुई और हथकरघा वस्त्रों जैसे उद्योगों के लिए सहकारी समितियों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होगी।

यदि ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्गों की समस्याओं के व्यापक रूप को देखा जाए तो स्थिति की अनिवार्यता का पता लग सकता है। देहाती इलाकों में कमजोर वर्ग की परिभाषा के अंतर्गत भूमिहीन, खेतिहर मजदूरों की संख्या 4 करोड़ 75 लाख थी, जबकि खेत जोतने वाले 7 करोड़ 82 लाख व्यक्ति थे। 70 प्रतिशत खेतिहरों के पास दो हेक्टेयर से भी कम जमीन है।

इन कमजोर वर्गों की उपेक्षा करने वाली कोई भी योजना केवल थोड़े से लोगों को ही खुशहाली दे सकेगी। यदि विकास के लाभ ग्रामीण समुदाय के अधिकांश वर्गों को मुहैया न किए जाने का सिलसिला जारी रहा और खुशहाली चन्द लोगों तक ही सीमित रही तो इसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न सामाजिक-आर्थिक तनाव से न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था के व्यवस्थित और शांतिपूर्ण परिवर्तन में बाधा पड़ सकती है, बल्कि कृषि उत्पादन बढ़ाने के राष्ट्रीय प्रयास पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ सकता है। जनसंख्या में तेजी से वृद्धि को ध्यान में रखकर देहाती इलाकों में व्यापक बेरोजगारी और आय में असमानता की समस्या पर विशेष ध्यान देना जरूरी है। वास्तव में कमजोर वर्गों के लोग कोई भी निर्णय लेने में

अपना योगदान तथा अपनी राय तभी प्रकट कर सकते हैं जब वे अपना एक संगठन बना लें, जिससे न केवल उनके आर्थिक हितों की रक्षा होगी बल्कि तेजी से बदलते हुए ढांचे में उत्पादक और उपभोक्ता के नाते वे अपनी जरूरतों को बता सकेंगे। सहकारी समितियां समयानुकूल समाधान हैं।

इस पृष्ठभूमि में अब हमें मौजूदा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर विचार करना चाहिए। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण लघु कृषक विकास एजेंसी कार्यक्रम, सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम और कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम हैं। इस समय लघु कृषक विकास एजेंसी कार्यक्रम के लिए 160, सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिए 54 और कमान क्षेत्र के विकास के लिए 61 परियोजनाएं भी चल रही हैं। इस समय सरकार एक समन्वित ग्रामीण विकास योजना शुरू करना चाहती है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं का विस्तृत विकास है जिनमें लघु और सामांत किसान, भूमिहीन खेतिहर मजदूर, ग्रामीण कारीगर, अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित कमजोर वर्गों के व्यक्ति शामिल हों। यह जान लेना चाहिए कि इन सभी कार्यक्रमों में कृषि विकास का प्रमुख स्थान है। ऐसा इस लिए है कि अधिकांश ग्रामीणों को कृषि और सम्बन्धित कार्यों पर लम्बे समय तक निर्भर रहना पड़ेगा।

इन सभी कार्यक्रमों में अन्य बातों के अलावा बुनियादी सुविधाओं के विकास पर अधिक बल दिया गया है। इस दिशा में सहकारी संस्थाओं को महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी गई है। वास्तव में लघु कृषक विकास एजेंसी परियोजनाओं में विकास के लिए अन्य आवश्यक वस्तुओं के साथ ऋण सुविधाओं का समुचित प्रयोग किया जाता है और अधिकतर यह कर्जा सहकारी ऋण संस्थाओं से मिलता है। इसी प्रकार हाट-व्यवस्था, अनाज तैयार करने और भंडारण के मामले में भी सहकारियों की भूमिका कम नहीं है। काफी हद तक इन कार्यक्रमों की सफलता इन संस्थाओं के बीच समन्वय तथा विकास प्रक्रिया में लगी अन्य एजेंसियों के सहयोग से काम करने पर निर्भर करती है।

सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमारी ऐसी समन्वित सहकारी ग्रामीण सेवाएं काफी लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं। परन्तु मौजूदा ढांचे में सहकारी सेवाओं को व्यापक बनाने भर से ही काम नहीं चलेगा। ग्रामीण समुदाय की कुल जरूरतों को पूरा करने की दृष्टि से सारी प्रणाली का पूरी तरह से पुनर्गठन करना होगा जिसका झुकाव कमजोर वर्गों को अधिक लाभ पहुंचाने की ओर हो। इस प्रणाली को विशेषकर सूखाग्रस्त और आदिवासी क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। ऐसे इलाकों में सहकारिता ढांचा कमजोर है। इन क्षेत्रों में सहकारियों का कार्य वास्तव में चुनौती भरा है।

सहकारी आन्दोलन के विभिन्न क्षेत्रों की उपलब्धियों को कम करके बताने की मेरी मंशा नहीं है। अल्प अवधि और मध्यम अवधि के सहकारिता ऋण जो 1951 में 23 करोड़ रु० थे, 1976-77 में बढ़कर 989 करोड़ रु० हो गए। इसी प्रकार लम्बी अवधि के सहकारी ऋण भी, जो पहली योजना में 6 करोड़ रु० थे, पांचवीं योजना में बढ़कर 780 करोड़ रु० तक पहुंच गए। खेती की पैदावार के लिए हाट-व्यवस्था, अनाज तैयार करने, भंडारण और वितरण के क्षेत्र में भी सहकारियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तथापि हमें इस समय यह देखना है कि विकास के कार्य और समाज के कमजोर वर्गों की मदद के उद्देश्य में ये संगठन कहां तक सफल हुए हैं। यदि ऋण पहलू को देखा जाए तो गत पांच वर्षों के दौरान दिए गए कुल कर्जे का कम या अधिक लगभग एक तिहाई ऋण ही समाज के कमजोर वर्गों को मिल पाया है। यह स्थिति तब है जबकि इस अवधि के दौरान कमजोर वर्गों के लिए बहुत सी छूट दी गई। छोटे किसानों की सेवा के लिए विशेष रूप से स्थापित की गई किसान सेवा समिति को मिलाकर बहुत से संगठनात्मक परिवर्तन किए गए हैं। सहकारियों की सदस्यता की सार्वभौमिकता से सम्बन्धित बहुत से राज्यों ने हाल ही में कानून बनाए हैं और यह इस दिशा में दूसरा कदम है।

छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान विभिन्न क्षेत्रों में विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिए सहकारी संगठनों से अपेक्षित कुल सहायता का जल्दी ही अनुमान लगाना होगा। इस प्रकार के संकेत हैं कि सहकारियों के समक्ष बहुत महान काम है। फिर भी हम यह आशा कर सकते हैं कि उनके लिए निर्धारित लक्ष्य पहले की तरह ही प्राप्त कर लिए जाएंगे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस दृष्टिकोण का अर्थ ऋण, कृषि के लिए आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति, संसाधन, विपणन, विस्तार सेवाएं तथा कीमत प्रोत्साहन जैसे विभिन्न कार्यों को एक साथ करना होगा। उपयुक्त प्रौद्योगिकी और पर्याप्त प्रबन्ध कुशलता भी इस कार्य के लिए महत्वपूर्ण होगी। इन विभिन्न समस्याओं के लिए काफी मजबूत संस्थाओं की आवश्यकता होगी।

एक पहलू और भी है जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं। वह यह है कि संस्थाएं बदलती हुई स्थितियों और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार अपने आप को नहीं ढाल पातीं। इनमें से बहुत सी संस्थाएं कठोर रवैया अपना लेती हैं जिससे मौजूदा बुनियादी सुविधाएं किसी भी विकास कार्यक्रम के लिए अनुकूल नहीं बन पातीं। यह कहा जाता है कि संस्थागत ढांचे में धीरे-धीरे परिवर्तन होने चाहिए, खासकर उस समय जबकि वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी और जानकारी में तीव्र प्रगति हो रही हो। जब तक संस्थाएं आधुनिकीकरण की मांग और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए डाली गई जिम्मेदारी को निभाने लायक नहीं बनेंगी, तब तक किसी भी बढ़िया कार्यक्रम की शुरूआत खटाई में पड़ सकती है। यह एक खतरा है जिसके प्रति हमें सचेत रहना है।

पर्वतीय क्षेत्रों का विकास

एच० पी० एन० मूर्ति

मानव सभ्यता का जन्म पर्वतीय क्षेत्रों में हुआ या मैदानी क्षेत्रों में, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। संभव है कि कुछ क्षेत्रों में सभ्यता का जन्म पर्वतीय क्षेत्रों में हुआ हो और कुछ में मैदानी क्षेत्रों में, तथापि इस देश के पर्वतीय क्षेत्रों ने सदैव से ही हमारी परम्परा और संस्कृति का परिपोषण और विकास किया है। पर्वतों और मैदानों की अर्थव्यवस्था एक दूसरे से जुड़ी और एक दूसरे पर आश्रित है। एक क्षेत्र में विकास की कमी का दूसरे क्षेत्र के विकास की संभावनाओं पर स्वाभाविक असर पड़ता है। अपने सम्पन्न साधनों के बावजूद हिमालय क्षेत्र, दक्षिण का पठार, पश्चिमी और पूर्वी घाट तथा देश के मध्य और दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्रों के अनेक भाग काफी समय से अलग-थलग और पिछड़े हैं। कुछ क्षेत्रों में वन सम्पदा का बुरी तरह शोषण किया गया, जिससे उस समस्त क्षेत्र का पारिस्थितिकी सन्तुलन बिगड़ गया। इस शोषण का सम्पूर्ण लाभ बाहरी आदमियों ने उठाया और स्थानीय जनता आज भी अभाव तथा दरिद्रता का जीवन बिता रही है। सम्पन्न वन सम्पदा के अंधाधुंध विनाश के कारण भूमि कटाव, बांधों में मिट्टी का भराव और बाढ़ जैसी अनेक समस्याएं पैदा हो गई हैं।

पर्वतीय क्षेत्र

देश में 9 राज्य या संघ क्षेत्र ऐसे हैं जिन्हें पर्वतीय कहा जा सकता है जैसे जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, नागालैंड, मिजोरम, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह। 1971 की जनगणना के अनुसार इनकी जनसंख्या 1 करोड़ 31 लाख है। इसके अलावा देश के 10 राज्यों अर्थात असम, गुजरात, केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में काफी पर्वतीय क्षेत्र हैं, जहां 3 करोड़ 46 लाख लोग रहते हैं। इस प्रकार लगभग 5 करोड़ लोग या देश की कुल जनसंख्या का 8% पर्वतीय क्षेत्रों में रहता है।

प्रमुख समस्याएं

पर्वतीय क्षेत्रों की अनेक समस्याएं हैं, जिनमें से कई महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए काफी समय से वन सम्पदा के विनाश के कारण भूमि कटाव की समस्या सबसे गंभीर है। भूमि कटाव से न केवल पर्वतीय क्षेत्रों में उपज में कमी हुई है बल्कि बांधों में मिट्टी के भराव, बाढ़ आदि दूसरी समस्याएं भी पैदा हो गई हैं। कुछ क्षेत्रों में, विशेष रूप से उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में 'झूम' खेती का चलन है। झूम खेती में निश्चित स्थानों पर लगातार खेती नहीं की जाती। इस प्रथा के कारण बड़े पैमाने पर वनों का विनाश किया जाता है और स्थानीय जनता के जीवन स्तर में सुधार हुए बिना वनों को स्थायी नुकसान पहुंचता है।

पर्वतीय क्षेत्रों की एक अन्य गंभीर समस्या संचार और बिक्री सुविधाओं की कमी है। इन क्षेत्रों के भीतरी क्षेत्र काफी समय तक अन्य क्षेत्रों से कटे रहते हैं जिससे वहां कोई आर्थिक और वाणिज्यिक गतिविधियां नहीं हो पातीं और ये क्षेत्र पिछड़े रह जाते हैं। इन क्षेत्रों की दुर्गमता के कारण स्थानीय जनता की तकनीकी, प्रबन्धकीय, उद्यमीय क्षमता में वैज्ञानिक आधार पर कोई विशेष सुधार नहीं किया जा सका है।

इन क्षेत्रों का मुख्य उद्यम खेती है, जो अभी भी छोटी जोतों में पर्वतीय ढलानों पर परम्परागत और पुराने तरीके से की जाती है। इससे प्रति एकड़ उपज बहुत कम प्राप्त होती है। यद्यपि जलवायु, वर्षा, ऊंचाई आदि के कारण यहां कई किस्म की साग-सब्जियां व फल पैदा किए जा सकते हैं, किन्तु साधनों और आधुनिक बागवानी की तकनीकी जानकारी की कमी और परिरक्षण तथा बिक्री सम्बन्धी सुविधाओं के अभाव में खास काम नहीं हो सका है। पशु पालन की दृष्टि से भी ये इलाके अभी तक पिछड़े हैं यद्यपि यहां बेहतर पशुओं की नस्ल विकसित करने, भेड़ और मुर्गी पालन आदि की काफी सम्भावनाएं हैं।

विकास की सम्भावना

पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि, बागवानी, पशु-पालन आदि के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी विकास की काफी सम्भावनाएं हैं। ये क्षेत्र प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक स्थानों पर पर्यटन केन्द्र स्थापित किए जा सकते हैं। इन क्षेत्रों की स्वास्थ्य वर्धक तथा धूल रहित जलवायु के कारण यहां स्वास्थ्य लाभ करने के अनेक केन्द्र विकसित किए जा सकते हैं।

यहां अनेक किस्म के जीव-जन्तु और वनस्पति पाई जाती है। इनकी रक्षा और अध्ययन की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। इन क्षेत्रों में पाई जाने वाली जड़ी-बूटियों के विकास की भी काफी गुंजाइश है। इन क्षेत्रों में पाए जाने वाले वृक्षों का उपयोग सुगन्ध, तेल, गोंद आदि बनाने में किया जा सकता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक किस्म के खनिज तथा रत्न भी पाए जाते हैं। अगर इनका उचित उपयोग किया जाए तो स्थानीय जनता की आर्थिक दशा सुधारी जा सकती है। इन क्षेत्रों में स्थानीय कच्चे माल पर आधारित स्थानीय और कुटीर उद्योग स्थापित करने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार यहां फल-उद्यानों और वनों पर आधारित विभिन्न प्रकार के उद्योग स्थापित करने की भी अच्छी सम्भावनाएं हैं।

विकास के प्रयत्न

पहली तीन योजनाओं के दौरान कुछ विशेष स्कीमों के लिए अतिरिक्त सहायता के रूप में इन क्षेत्रों के आर्थिक विकास की ओर कुछ ध्यान दिया गया। फिर भी पर्वतीय क्षेत्रों के एकीकृत आर्थिक विकास कार्यक्रम के लिए कृषि और सम्बद्ध क्षेत्रों की योजना हाल ही में

तैयार की गई है। पिछली योजनाओं के दौरान पिछड़े क्षेत्रों का आर्थिक विकास मुख्य रूप से राज्य सरकारों की जिम्मेदारी समझी जाती थी। केन्द्र सरकार कुछ चुने हुए पिछड़े इलाकों के विकास के लिए चुने हुए सीमित कदम उठाती थी। कुछ पिछड़े राज्यों को समाज के दुर्बल वर्गों की विशेष आवश्यकताएं पूरी करने के लिए कुछ विशेष सहायता दी जाती थी। पांचवीं योजना के दौरान उन राज्यों को, जहां काफी पर्वतीय क्षेत्र थे, सामान्य योजना खर्च के अलावा पर्वतीय क्षेत्रों के विकास के लिए अतिरिक्त विशेष केन्द्रीय सहायता प्रदान की गई।

भारत-जर्मनी परियोजनाएं

कृषि के क्षेत्र में भारत-पश्चिम जर्मनी सहयोग 1962 में मंडी, हिमाचल प्रदेश में भारत-जर्मनी कृषि विकास परियोजना के साथ शुरू हुआ। मंडी परियोजना एक सम्पूर्ण जिले के समेकित कृषि विकास का प्रयोग है। उद्देश्य यह है कि कृषि उत्पादन, बागवानी, पशुपालन और डेयरी सहित विभिन्न कृषि उद्यमों का विकास किया जाए। परियोजना के अधीन उत्पादन बढ़ाने के बुनियादी आधार को मजबूत बनाने के साथ-साथ आपूर्ति और बिक्री तथा भंडारण और परिष्करण सम्बन्धी सहायक सेवाओं को संगठित करने की ओर भी ध्यान दिया गया। मंडी परियोजना की सफलता से उत्साहित होकर तीसरी और चौथी योजना के अधीन जर्मनी के सहयोग से कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश), नीलगिरि (तमिलनाडु), और अल्मोड़ा (उत्तर प्रदेश) में ऐसी ही तीन और परियोजनाएं शुरू की गईं। पश्चिम जर्मनी की सहायता से चलने वाली इन परियोजनाओं की प्रगति अच्छी है।

अन्य परियोजनाएं

पौड़ी-गढ़वाल (उत्तर प्रदेश) और नुंगबा (मणिपुर) में चौथी योजना के अन्त में शुरू की गई परियोजनाएं मंडी परियोजना के आधार पर शुरू की गई हैं। मंडी परियोजना के कार्यान्वयन से

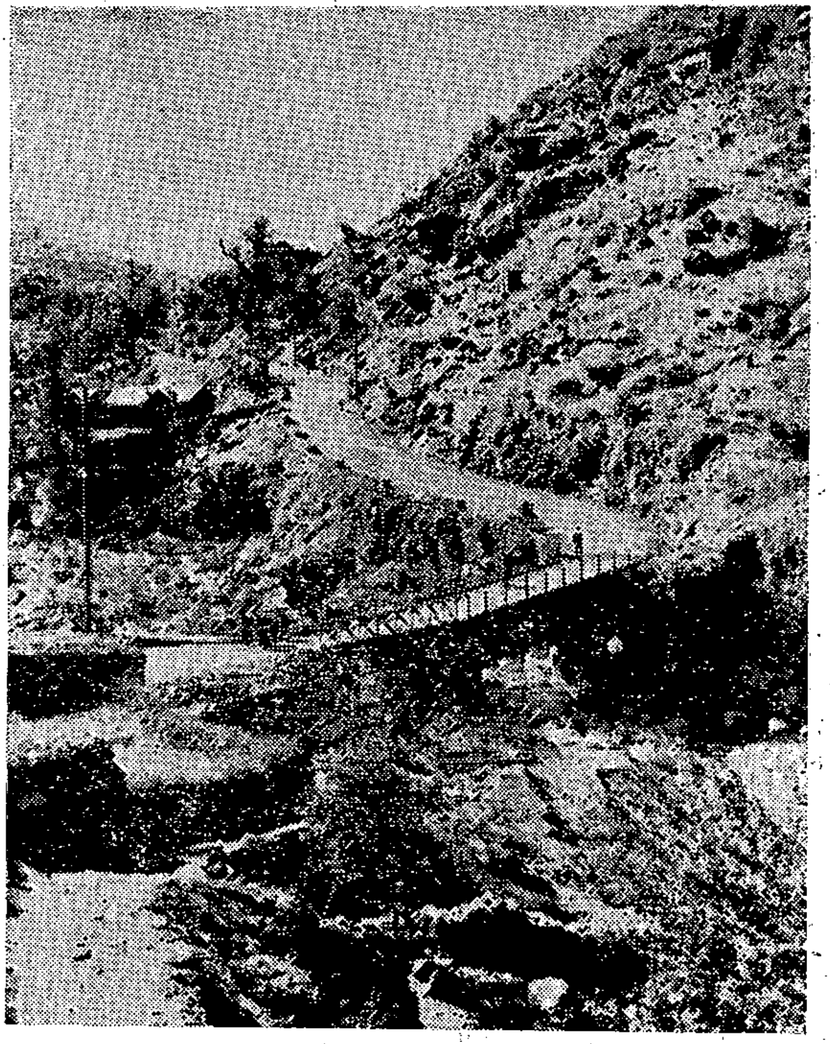

पर्वतीय क्षेत्रों के विकास के लिए संचार साधन जरूरी हैं

देश के पिछड़े पर्वतीय क्षेत्रों के वास्ते समेकित क्षेत्र विकास योजना के लिए आवश्यक अनुभव प्राप्त हुआ। कृषि, बागवानी, पशुपालन और विकास का बुनियादी आधार विकसित करने के बड़े अच्छे परिणाम निकले। पिछले वर्षों के दौरान प्राप्त अनुभव को ध्यान में रखते हुए 1975-76 के अन्त में टिहरी-गढ़वाल (उत्तर प्रदेश) में एक तीसरी पर्वतीय क्षेत्र विकास योजना शुरू की गई।

इन परियोजनाओं के अधीन आने वाले पर्वतीय क्षेत्रों में संचार जैसी बुनियादी सुविधाएं नहीं हैं। भूमि उपयोग, फसलों के क्रम आदि सम्बन्धी प्रामाणिक आंकड़ों के अभाव में विकास कार्यों की वैज्ञानिक आयोजना नहीं की जा सकती। इन क्षेत्रों की जनता विभिन्न किस्म की जलवायु और ऊंचाइयों में रहती है। इन पर्वतीय क्षेत्रों की समस्या को हल करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करने की ओर दीर्घावधि योजना बनाने की आवश्यकता है।

अब तक के अनुभव से पता चलता है कि संचार आदि के लिए विभिन्न चरणों में ठोस बुनियादी आधार विकसित करके समेकित आधार पर पर्वतीय क्षेत्रों के विकास की समस्याओं को हल किया जा सकता है। मंडी के अनुभव पर आधारित परियोजनाओं से, जो पिछले दस वर्षों से कार्य कर रही हैं, इस दृष्टिकोण की पुष्टि होती है।

अनुवादक : जयन्ती पन्त

गरीबों की मदद के लिए राजस्थान का अन्त्योदय कार्यक्रम

पारसनाथ तिवारी

[राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने दरिद्रनारायण के लिए क्या नहीं किया और क्या नहीं कहा ? पर क्या गरीबों की स्थिति सुधरी ? उत्तर स्पष्ट नहीं है। हम सबका दायित्व है कि बापू के संदेश को जन-जन तक पहुंचाएं और उनके कार्य को आगे बढ़ाएं। हर्ष का विषय है कि राजस्थान सरकार ने गरीबों की स्थिति सुधारने के लिए 'अन्त्योदय' योजना शुरू की है, जिससे अगले पांच वर्षों में लगभग 8 लाख निर्धन परिवार लाभान्वित होंगे। प्रस्तुत लेख में इसी योजना का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।]

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जयन्ती के अवसर पर राजस्थान में गांवों में रहने वाले सबसे निर्धन परिवारों के उत्थान के लिए 'अन्त्योदय' कार्यक्रम शुरू किया गया है। अन्त्योदय कार्यक्रम से तात्पर्य है निर्धनतम व्यक्तियों की उन्नति की व्यवस्था करना।

राजस्थान में पिछले 25 वर्षों में गरीब ग्रामीणों के उत्थान के लिए बनाई गई योजनाएं बहुत कारगर साबित नहीं हो सकीं। वास्तविकता तो यह है कि यदि देहाती इलाकों में अमीरों और गरीबों की तुलना करें तो हमें इनके बीच एक बड़ी खाई नजर आती है। व्यावहारिक आर्थिक अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद के एक सर्वेक्षण के अनुसार राजस्थान में 56 प्रतिशत लोग गरीबी की सीमा रेखा के नीचे का जीवन यापन करते हैं। राष्ट्रीय उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण के अनुसार 1973-74 में राजस्थान के गांवों में 10 प्रतिशत परिवार ऐसे थे जो 100 रुपए प्रतिमाह खर्च करने में भी सक्षम नहीं थे। वस्तुतः ये 10 प्रतिशत परिवार पूरी तौर से दलित जीवन जी रहे हैं। ग्रामीण जनसंख्या के इस निश्चित भाग का जीवन स्तर ऊंचा उठाना एक चुनौती भरा कार्य है जिसके लिए आयोजना की व्यूह-रचना में परिवर्तन कर पूरे परिवार को एक इकाई के रूप में रखकर सूक्ष्म दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है।

8 लाख परिवारों को लाभ

गांवों में सबसे ज्यादा गरीबी का जीवन बिताने वालों के उत्थान के लिए राज्य सरकार ने अन्त्योदय योजना शुरू करने का निश्चय किया। इस कार्यक्रम के प्रथम चरण में प्रत्येक गांव के 5 निर्धनतम परिवारों को चुना जाएगा और उनका जीवन स्तर ऊंचा उठाने के बहुमुखी प्रयास किए जाएंगे। आरम्भ में इस कार्यक्रम से लाभान्वित होने वाले परिवारों की संख्या 1 लाख 66 हजार होगी। पांच वर्ष की अवधि में कार्यक्रम से लाभान्वित होने वाले परिवारों की संख्या आठ लाख तक होने की उम्मीद है।

अग्रिम कार्य प्रारम्भ

इस तरह के कार्यक्रम में अनेक जटिलताएं भी होनी स्वाभाविक हैं। पहली समस्या तो निर्धनतम परिवारों की पहचान करने से सम्बन्धित है। यह पहचान करने का काम ग्राम सभाओं के माध्यम से कराने का प्रस्ताव है, जिसमें सभी ग्रामवासी, पटवारी, ग्राम सेवक और अधिकारी भाग लेंगे। इन बैठकों में क्षेत्रीय संसद सदस्यों और विधायकों को भी आमंत्रित किया जाएगा। मौके पर ही ऐसे चुनिन्दा परिवारों के सामाजिक और आर्थिक उत्थान की रूपरेखा तैयार की जाएगी। इसमें ऐसे परिवारों की उत्पादक सम्पत्ति जैसे भूमि और पशुधन, आय का विवरण, खर्चा, उपलब्ध कुशल श्रम तथा उनके उत्थान के लिए कार्यक्रम आदि बातों का ब्यौरा रहेगा। जयपुर, जोधपुर, कोटा, चित्तौड़गढ़ और झुन्झुनू जिलों में अग्रिम जांच-पड़ताल के लिए अधिकारियों की टोलियां भेजी जा चुकी हैं। इन अधिकारियों की सूचनाओं और रिपोर्ट से कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में महत्वपूर्ण मदद मिलेगी।

इस योजना के अन्तर्गत आरम्भ किए जाने वाले कार्यक्रम स्थानीय आवश्यकताओं तथा सुलभ व्यवसायों के अनुसार विभिन्न गांवों तथा परिवारों के लिए अलग-अलग हो सकते हैं। मोटे रूप में पहचान का कार्य हो चुका है। राजस्थान नहर क्षेत्र में 50 हजार परि-

वारों को क्रमशः परियोजना क्षेत्र में प्राथमिकता के आधार पर भूमि आवंटित की जा सकती है। जहां कहीं भी ऐसी राजकीय भूमि, जिस पर किसी का कब्जा न हो, ऐसे ही परिवारों को प्राथमिकता देकर आवंटित की जा सकती है। इसी संदर्भ में उत्पादन के लिए हल, बैल, अल्पावधि ऋण आदि भी संस्थागत स्रोतों से दिलवाने होंगे। लघु और सीमान्त कृषक अभिकरणों के जरिए अनुदान दिलाने का भी प्रबन्ध करना पड़ेगा। भेड़ और बकरी पालन, मुर्गीपालन, शूकर पालन, बैलगाड़ी, ऊंट गाड़ी तथा हाथ की गाड़ियां खरीदने के अन्य अनेक कार्यक्रम हाथ में लिए जाएंगे। ऐसी योजनाओं के लिए ऋण व्यावसायिक और सहकारी बैंकों के माध्यम से सुलभ कराया जाएगा तथा अनुदान का अंश लघु कृषक विकास और सीमान्त कृषक विकास अभिकरणों के प्रतिमानों पर दिए जाने का प्रबन्ध करना होगा।

विशेष प्रयास

इस कार्यक्रम के तहत चुने गए लाभान्वित होने वाले परिवारों के लिए लघु उद्योग, कुटीर उद्योग, ग्रामीण उद्योग एवं खादी उद्योग को प्रोत्साहन देने की दिशा में विशेष प्रयत्न किए जाएंगे। ऐसे परिवारों के सदस्यों को उनके गांव से 10—15 किलोमीटर की दूरी तक की खानों एवं औद्योगिक संस्थानों में प्राथमिकता के आधार पर काम दिलाने के निर्देश भी दिए जा सकते हैं।

लाभान्वित होने वालों में से बड़ी संख्या में लोगों को ग्रामीण सड़कों, सिंचाई परियोजनाओं, वन विकास और भू-संरक्षण जैसे सार्वजनिक निर्माण एवं विकास कार्यों में भी काम दिलाया जा सकता है। कुछ परिवार ऐसे भी हो सकते हैं जिनके 'कमाऊ' सदस्य अक्षमता अथवा वृद्धावस्था के कारण उपर्युक्त किसी भी तरह का काम न कर सकें। अतः यह व्यवस्था की गई है कि ऐसे लोगों को वृद्धावस्था पेंशन के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाए, जिसकी राशि अब बढ़ा दी गई है।

सम्पूर्ण कार्यक्रम के संचालन के लिए 10 जिलों में जहां सूखा संभाव्य क्षेत्र परियोजना चल रही है, वहां इस परियोजना के अधिकारियों की देखरेख में और जिन 6 जिलों में लघु कृषक विकास अभिकरण और सीमान्त कृषक विकास अभिकरण हैं वहां इन्हीं अभिकरणों को जिलाधीश की सम्पूर्ण देख-रेख में पूरा दायित्व सौंपा गया है। कार्यक्रम के लिए धनराशि जिला विकास अभिकरण और लघु कृषक विकास अभिकरणों द्वारा काम के बदले अनाज कार्यक्रम व सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए आवंटित विभागीय बजट आदि से ही जुटाई जाएगी। कार्यक्रम के प्रथम चरण के लिए इस वर्ष बजट में 25 लाख रुपयों का प्रावधान किया गया है।

शीर्ष समिति

इस कार्यक्रम की व्यापक व्यूह-रचना, आयोजना, क्रियान्विति तथा वित्तीय व्यवस्थाओं के निर्धारण के लिए मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक शीर्ष समिति गठित करने का प्रस्ताव है। इस समिति में मंत्रियों, खादी एवं ग्रामोद्योगों से संबंधित गैरसरकारी लोगों, स्वयंसेवी संस्थाओं; व्यवसायी अर्थशास्त्रियों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं को सम्मिलित करने का प्रस्ताव है। कार्यक्रम में समवन्य बनाए रखने तथा निर्देशन करने के उद्देश्य से एक अन्य राज्य स्तरीय समिति गठित करने का भी प्रस्ताव है।

अन्त्योदय का यह कार्यक्रम इसी दृढ़ विश्वास और आशा के साथ आरंभ किया जा रहा है कि देहाती इलाकों के सबसे गरीब लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठाने और उन्हें जीवन यापन की न्यूनतम सुविधाएं सुलभ कराने में समाज के सभी तबकों का सहयोग मिलेगा और इस तरह राष्ट्रपिता के एक स्वप्न को मूर्तरूप दिया जा सकेगा।

ज्योति-पर्व

सोना देती मेरी धरती, खुशियों का अम्बार है।
दीपों के इस ज्योति-पर्व पर, मुझे वतन से प्यार है॥
दुर्गम-तम के चक्रव्यूह में
दिनकर अभिमन्यु सा लड़ता
ओ युग के सेनानी जागो
त्यागो अन्तर्मन की जड़ता
प्रकृति की इस रम्य गोद में मनना श्रम त्योहार है।
दीपों के इस ज्योति-पर्व पर, मुझे वतन से प्यार है॥
स्वेद धरा पर जहां गिरेगा
वहां तीर्थ है पावन धाम
श्रमिक जहां पर कर्मशील हैं
वहीं प्रगति का है आयाम
नयी-चेतना की बेला में, प्रजातन्त्र उपहार है।
दीपों के इस ज्योति-पर्व पर, मुझे वतन से प्यार है॥
बंजर में अब ममता जागी
नहीं रहेगी द्वार समस्या
कर्म जहां का मूलमन्त्र हो
वहां करे क्या ध्यान तपस्या?
जहां योजना अन्नपूर्णा वहीं हर्ष का द्वार है।
दीपों के इस ज्योति-पर्व पर, मुझे वतन से प्यार है॥

मोहन जोशी 'मस्ताना'

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार सम्पर्क सड़कें

—विनय कुमार—

[गांवों की आर्थिक प्रगति के लिए ग्रामीण सड़कें रीढ़ की हड्डी के समान हैं। सड़कों का तेजी से विकास करके ही गांवों को सशक्त आत्म-निर्भर इकाइयों के रूप में विकसित किया जा सकता है। कुछ लोगों का तो कहना है कि यदि गावों से शहरों और मंडियों तक जाने-आने के मार्ग सुलभ हों तो गांवों की आधी से अधिक समस्याएं स्वतः हल हो जाएंगी। उनकी सुरक्षा बढ़ जाएगी और खुशहाली कदम चूमेगी। तब कोई वजह नहीं कि भूमि, जन-शक्ति और प्राकृतिक साधनों के बावजूद ग्रामीण मैले-कुचैले, भूखे-नंगे और टूटे-फूटे मकानों में रहकर ही हमेशा गुजारा करते रहने को मजबूर रहें।]

आज जब चन्द्रमा तक जाना आसान हो गया है तो गांवों और शहरों के बीच की दूरी समाप्त करने के लिए सड़कों का तेजी से निर्माण कोई असम्भव बात नहीं है। यह खेद जनक है कि इस दिशा में पर्याप्त प्रगति नहीं हुई, बल्कि राष्ट्रीय विकास के नाम पर शहरीकरण की होड़ लगी है और गांव अपने साधनों से वंचित होते जा रहे हैं।

ग्रामीण सड़कों की बात तो छोड़िए राष्ट्रीय राजमार्गों का भी अभी पर्याप्त विकास नहीं हुआ है। चौथी पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में ऐसे मार्गों की कुल लम्बाई 24 हजार किलोमीटर थी। चौथी योजनावधि में इस प्रणाली में केवल 4800 किलोमीटर लम्बे राष्ट्रीय राज मार्ग सम्मिलित किए जा सके।

देश भर में सड़कों की कुल लम्बाई 1951 में लगभग चार लाख किलोमीटर थी, जो 1973 में बढ़कर 11 लाख 54 हजार हो गई।

जनसंख्या की दृष्टि से देखा जाए तो यह प्रगति काफी अपर्याप्त है। इस प्रकार मोटे तौर पर प्रति एक लाख व्यक्ति के पीछे सड़कों की लम्बाई केवल 200 किलोमीटर है। आस्ट्रेलिया, अमेरिका, और ब्रिटेन आदि समृद्ध देशों की तुलना में हमारा आज का यह स्तर उनके 1955 के स्तर से भी कहीं पिछड़ा हुआ है। उस समय भी आस्ट्रेलिया में प्रति

सम्पर्क सड़कें विकास के लिए बड़ी जरूरी हैं

एक लाख व्यक्ति के पीछे सड़कों की लम्बाई लगभग नौ हजार किलोमीटर, कनाडा में लगभग साढ़े पांच हजार किलोमीटर और ब्रिटेन में लगभग 600 किलोमीटर थी।

भारतीय सड़क कांग्रेस की सलाहकार परिषद की पिछली बैठक में ग्रामीण विकास के लक्ष्यों को ध्यान में रखकर ग्रामीण सड़क आयोग की स्थापना के प्रस्ताव पर विचार-विमर्श किया गया। इस बैठक में सड़क वैज्ञानिक और इंजीनियर भी काफी संख्या में उपस्थित थे। ग्रामीण सड़क निर्माण निगम व ग्रामीण सड़क निर्माण कोष स्थापित करने की व्यावहारिक समस्याओं पर भी विचार-विमर्श किया गया। सिफारिशों और निर्णयों की अभी प्रतीक्षा है। इस बीच सड़कों की लागत घटाने और दुर्घटनाएं कम करने की दृष्टि से सड़कों के निर्माण पर विशेष बल दिया गया।

केन्द्र सरकार ने भी ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों के विकास के महत्व को स्वीकार किया है। इस वर्ष इस दिशा में सक्रिय कदम उठाए जा रहे हैं। 1977-78 के केन्द्रीय बजट में 20 करोड़ रुपए का प्रावधान है।

गांवों में केन्द्रीय सरकार के निर्देशक सिद्धान्तों के अनुसार मैदानी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति एक किलोमीटर सड़क के लिए 75 हजार रु० और पहाड़ी क्षेत्रों में प्रति एक किलोमीटर सड़क के लिए एक लाख रु० की सहायता देने की व्यवस्था है। निर्देशक सिद्धान्तों में स्पष्ट किया गया है कि ग्रामीण सम्पर्क मार्गों के निर्माण में यदि स्थानीय निकायों या पंचायतों का अपेक्षित सहयोग प्राप्त नहीं होता तो राज्य सरकारों को आगे होकर केन्द्रीय सहायता के अनुरूप सहायता करके निर्माण कार्यों को बढ़ावा देना चाहिए। इस योजना के अंतर्गत कम-से-कम 1500 तक की आबादी वाले वे गांव शामिल किए जाएंगे, जिनमें कृषि-उत्पादन की पर्याप्त गुंजाइश है। शुरू में यह कार्य उन गांवों तक सीमित रखा जाएगा जहां कम-से-कम धन खर्च करके अधिक से अधिक कार्य हो सके।

सड़कों के निर्माण और रख-रखाव से लाखों लोगों को रोजगार भी मिलता है। 1961-62 में लगभग आठ लाख लोग इस काम में लगे थे। अनुमान है कि 1980-81 तक इसी काम में लगभग 42 लाख लोगों को रोजगार मिलेगा। देश की सुरक्षा आवश्यकताओं के लिए भी सड़कों का महत्व अत्यधिक है।

अब प्रश्न यह है कि सड़कें कैसी बनें तथा सड़क निर्माण में तेजी लाने के लिए विदेशी मशीनों का उपयोग किया जाए या नहीं? इस बारे में कोई भी क्रांतिकारी कदम उठाने से पहले हमें समझ लेना चाहिए कि 60 करोड़ की आबादी वाले हमारे देश में आज भी लगभग तीन चौथाई लोग गांवों में रहते हैं। खाद, अनाज और चारा आदि ढोने के लिए आज भी बैलगाड़ियां काम में लाई जाती हैं। अब उन्नत किस्म की बैलगाड़ियां भी इस्तेमाल की जाने लगी हैं। यदि गांव से मंडी अधिक दूर नहीं है तो ये गाड़ियां अधिक किफायत वाली हैं। इनकी मरम्मत और रख-रखाव स्थानीय साधनों से हो सकता है। ट्रकों के साथ-साथ ये गाड़ियां उपयोग में लाई जा रही हैं और अभी इन पर निर्भर रहना होगा। ट्रक के लिए तेल (पेट्रोल-डीजल) न मिलने पर बैल और भैंसों के लिए चारे की कमी गांवों में नहीं होगी। इसीलिए सड़कें ऐसी बनें जिन पर ट्रक भी चल सकें और बैलगाड़ियां भी।

सड़क निर्माण में जहां तक हो सके देशी साधनों का प्रयोग करना चाहिए। हमारे देश में लाखों करोड़ों युवकों की शक्ति बेकार जाती है जिसका उपयोग सड़कों के निर्माण में किया जा सकता है।

—8239, शंग्लू बिल्डिंग,
रोशनआरा रोड,
दिल्ली-110007

[पृष्ठ 5 का शेषांश]

छोटे किसानों के लिए योजनाएं बनें

ऋण लेने वालों की कीमत पर फलता-फूलता है। इसलिए ऋण देने वाली संस्थाओं का निर्माण हमारा लक्ष्य रहना चाहिए, भले ही प्रक्रिया पूरी करने में में कुछ समय लगे।

मैं यह स्वीकार करता हूं कि ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों के लिए ऋण सुलभ करने के कार्यक्रम में कई समस्याएं हैं। छोटे किसान के पास मंडी में बेचने के लिए बहुत कम अनाज सुलभ होता है और वह अनाज को अपने पास रखने में समर्थ नहीं होता। इसलिए वह फसल की कटाई के समय मजबूरी में अनाज की बिक्री करता है और नकद की तात्कालिक जरूरत पूरी करता है। बाद में वह अधिक दाम देकर कमी के समय अनाज पुनः खरीदता है। गरीब किसान, जिन्हें गुजारे की खेती में ही गुजर-बसर करने की आदत पड़ गई है, को अधिक लागत और पूंजी वाली स्थिति को अपनाने में हिचकिचाहट होती है। यह बात समझ में आती है। चूंकि काम-धंधा छोटा है, उपलब्ध अतिरिक्त नकद राशि सीमित होती हैं और मौसमी उतार-चढ़ाव बहुत होता है। इससे पुनः चुकाने की क्षमता स्थिर नहीं रहती। ऋण संस्थाएं बढ़ाने मात्र से इन सभी समस्याओं का समाधान नहीं निकलेगा। ऋण का प्रभावशाली उपयोग करने के लिए कमजोर वर्ग के लोगों के लिए अन्य संस्थागत व्यवस्था और प्रशासनिक समर्थन देना होगा। अतः एशियाई देशों को ग्रामीण विकास के लिए इन बातों को ध्यान में रखना होगा।

भारत में पंचायती राज

ग्राम पंचायत भारत की प्राचीन संस्था है। इसकी सत्ता को आधार मिला पारम्परिक कानूनों और प्रचलित परम्पराओं से। प्राचीन भारत में यह एक निर्वाचित परिषद थी, जिसे अधिशासी और न्यायिक सत्ता प्राप्त थी। आठवीं शताब्दी में लिखित एक ग्रंथ में एक भारतीय ग्राम का वर्णन दिया गया है जिसके अनुसार राजा के अधिकारी भी पंचों का सम्मान करते थे। चन्द्रगुप्त के दरबार में आने वाले यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने लिखा कि भारत में ग्राम समुदाय छोटे-छोटे स्वतंत्र गणराज्यों के रूप में थे, जो आत्मनिर्भर और स्वशासी थे। सदियों बाद तक भारत में ये ग्रामीण संस्थाएं काम करती रहीं और फलती फूलती रहीं। ह्यू टिंकर के अनुसार मुगलों के समय में इनका अस्तित्व धीरे-धीरे लोप सा हो गया था। अंग्रेजों ने पंचायतों में अपनी प्राचीन स्वशासी संस्थाओं का रूप देखा और इन्हें पुनर्जीवित किया।

स्वतन्त्रता से पूर्व

ब्रिटिश काल में भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड रिपन ने 1882 में अपने विख्यात प्रस्ताव में घोषणा की कि भारत में राजनीतिक और लोकप्रिय शिक्षा के साधन के रूप में स्थानीय शासन को फिर से बढ़ाना होगा। इससे पश्चिम के विचारों से पैदा होने वाली इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं को मूर्त रूप मिलेगा। 1909 में विकेन्द्रीकरण पर शाही कमीशन की रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया गया कि प्राचीन पंचायत व्यवस्था को पुनर्जीवित किया जाए। 1920 में प्रांतीय सरकारों ने भारत सरकार के 1915 के प्रस्ताव के मोटे सिद्धान्तों के आधार पर कुछ चुनींदा गांवों में, जहां उपयुक्त स्थिति हो, पंचायतें कायम करने की दिशा में कदम उठाए। इन पंचायतों को कलक्टरों की देख-रेख में काम करना था। इस प्रस्ताव के अन्तर्गत विभिन्न ग्राम स्व-शासन अधिनियम पास हुए और अलग-अलग प्रान्तों में हजारों गांवों में पंचायतों की स्थापना हुई। उस समय के संयुक्त प्रान्त, बंगाल और मद्रास को छोड़ कर सभी प्रान्तों में पंचायतें अभी नयी-नयी थीं।

स्वतन्त्रता से पहले यह नहीं तय हो पाया था कि भारत में राजनीतिक लोकतन्त्र कैसा हो और उस लोकतन्त्र में

डा० प्रेम प्रकाश संगल

परम्परा से चली आयी पंचायतों का क्या स्थान हो। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के नेता यह मांग कर रहे थे कि स्थानीय ग्रामीण संस्थाओं को अधिक स्वायत्तता दी जाए। राष्ट्रीय मंच पर महात्मा गांधी के आगमन से इस मांग को सैद्धान्तिक बल मिला। गांधी जी व्यक्ति की स्वतन्त्रता और प्रशासन को विकेन्द्रित करने में विश्वास रखते थे। ग्राम पंचायतों के सम्बन्ध में गांधी जी के विचार इस प्रकार थे—

"ग्राम स्वराज्य के बारे में मेरा विश्वास है कि यह एक सम्पूर्ण गणतंत्र है। अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए यह किसी पर निर्भर नहीं है। साथ ही कुछ मामलों में ये परस्पर निर्भर भी हैं। गांव का शासन पंचायत चलाएगी जिसके पांच सदस्य होंगे। इनका चुनाव गांव के बालिग सदस्य हर वर्ष करेंगे। इसमें स्त्री-पुरुष दोनों शामिल होंगे जो निर्धारित योग्यताएं पूरी करते हों। इनको सभी अधिकार होंगे। यह पंचायत विधायक, न्यायपालिका और अधिशासी तीनों अधिकार रखेगी। हर गांव ऐसा गणतन्त्र बन सकता है जिसमें कम से कम हस्तक्षेप हो।"

स्वतन्त्रता के बाद

स्वतन्त्रता के बाद संविधान सभा के कई सदस्यों ने पंचायतों को फिर से शक्तिशाली बनाने और प्रशासन में विशिष्ट भूमिका अदा करने पर जोर दिया। संविधान की धारा 40, जो राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों से सम्बन्धित है, के अनुसार "राज्य ग्राम पंचायत के गठन के लिए कदम उठाएगा और उन्हें अधिकार और सत्ता देगा जिससे वे स्वशासी इकाइयों के रूप में काम कर सकें।" पर यह बात बड़ी निराशाजनक थी कि स्वतन्त्रता के बाद भी पंचायतों को उन्हीं नियमों और परिस्थितियों में काम करना पड़ा जो स्वतन्त्रता से पूर्व थीं। यह स्थिति 24 नवम्बर 1957 तक रही, जब बलवंतराय मेहता कमेटी ने "प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण" के सिद्धान्त को स्वीकार किया। यह कमेटी योजना आयोग ने सामुदायिक कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए नियुक्त की थी। इस कमेटी को जिला प्रशासन के पुनर्गठन के बारे में विचार करना था, जिससे ग्राम और राज्य स्तर पर लोकतान्त्रिक संगठन स्थापित किए जा सकें। इसके अनुरूप कमेटी ने ग्राम विकास खंड और जिला स्तर पर

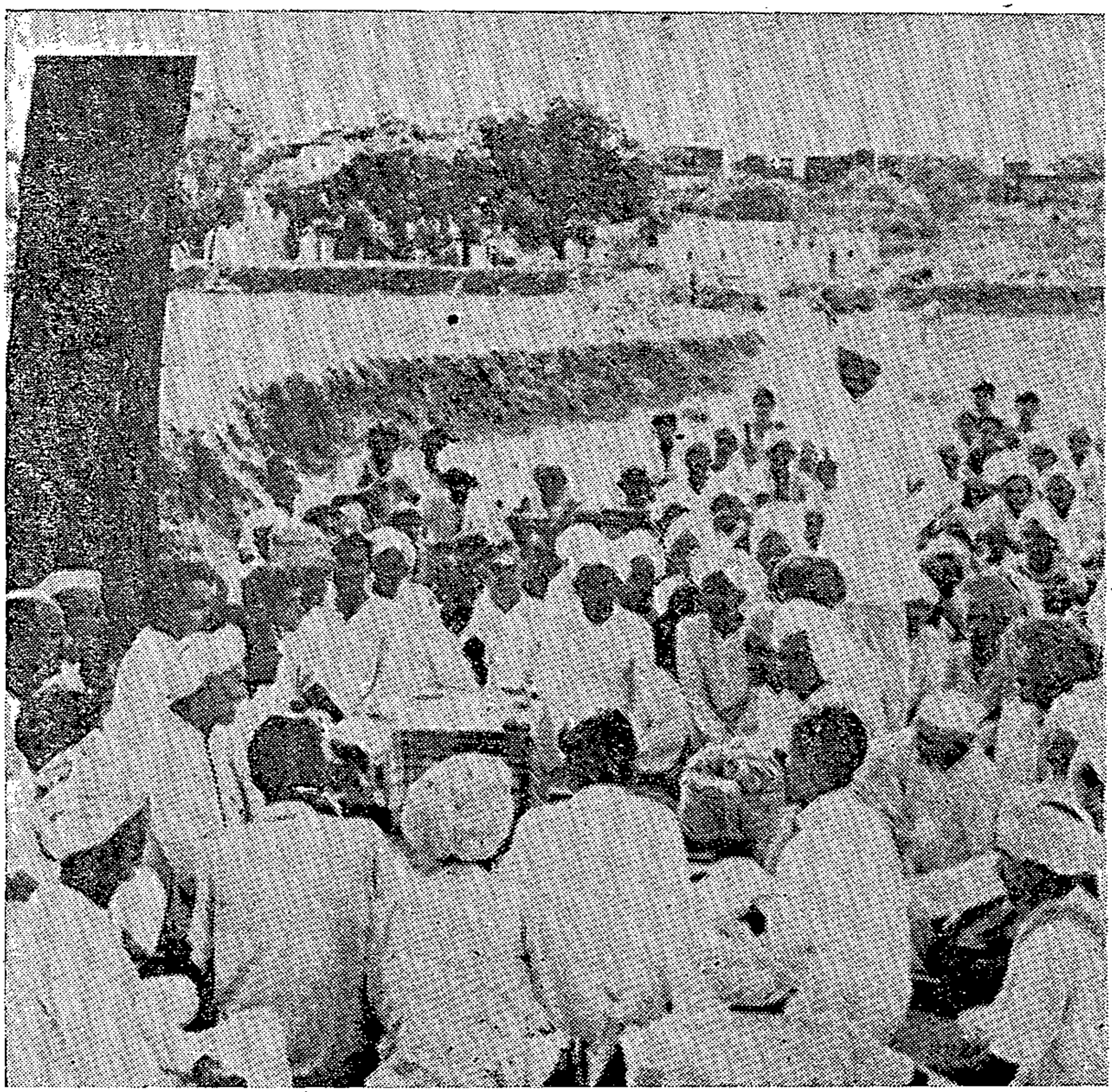

लोकतंत्र का असली स्वरूप पंचायतों में देखने को मिलता है

निर्वाचित और परस्पर संम्बद्ध लोकतान्त्रिक संस्थाओं के गठन की सिफारिश की। राष्ट्रीय विकास परिषद ने 1958 में कमेटी की सिफारिशों को मंजूर कर लिया। स्थानीय स्वशासी संस्थाओं की केन्द्रीय परिषद ने 1959 में हैदराबाद में हुई पांचवीं बैठक में राज्यों द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद की सिफारिशों के अमल के बारे में किए गए कामों का जायजा लिया और सिफारिश की कि मोटी रूप-रेखा और आधारभूत बातें एकसी होनी चाहिए पर ढांचा एक जैसा नहीं होना चाहिए। दरअस्ल हमारा देश इतना विशाल है और पंचायती राज (लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण) इतना जटिल और दूरगामी परिणाम वाला विषय है कि इसमें अलग-अलग ढांचे रखने होंगे। जो चीज जरूरी है वह यह है कि सही रूप में जनता को सत्ता मिले। अगर यह चीज हो जाए तो ढांचा अलग-अलग राज्यों में उनकी स्थिति के अनुरूप हो सकता है। इस सिफारिश के आधार पर ही भारत सरकार की नीति निर्धारित की गई। इसी के अनुसार राज्य सरकारों ने पंचायती राज के लिए अपनी रूप-रेखा अलग-अलग बनाई। आधारभूत सिद्धान्त और मूल आधार एक ही था।

प्रगति

"लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण" की सिफारिशों को अमल में लाने वाला सबसे पहला राज्य राजस्थान था, जहां बलवन्त राय मेहता कमेटी की सिफारिशों के आधार पर तीन चरण वाला पंचायती

राज शुरू किया गया। इसके अनुसार तीन चरण वाली व्यवस्था थी—सबसे पहले ग्राम स्तर पर (ग्राम पंचायत), दूसरे विकास खंड स्तर पर (पंचायत समिति) और तीसरे जिला स्तर पर (जिला परिषद)। यह व्यवस्था आंध्र प्रदेश, बिहार (31 जिलों में से 8 जिलों में), गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश तथा अरुणाचल और चन्डीगढ़ के केन्द्र शासित प्रदेशों में सफलतापूर्वक चालू है। कर्नाटक और तमिलनाडु में जिला स्तर पर जिला परिषद नहीं है। वहां जिला विकास परिषद हैं जिन्हें शासी अधिकार नहीं हैं। वे केवल सलाहकार समिति हैं। पश्चिम बंगाल में चार-चरण वाली व्यवस्था है, जो इस प्रकार है—ग्राम पंचायत, अंचल पंचायतें, आंचलिक परिषदें और जिला परिषद। पश्चिम बंगाल सरकार ने एक पश्चिम बंगाल पंचायत अधिनियम 1973 पारित किया जिसके अनुसार तीन चरण वाली व्यवस्था है।

हरियाणा, मध्य प्रदेश और उड़ीसा में दो चरण वाली व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत पंचायत समिति भी हैं। आसाम में भी दो चरण वाली व्यवस्था है। वहां ग्राम स्तर पर गांव पंचायतें हैं और उप-मंडलीय स्तर पर मोहकुमा परिषद है। जम्मू-कश्मीर, केरल, मणिपुर, सिक्किम त्रिपुरा, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली और गोआ, दमन और द्वीव में सिर्फ ग्राम पंचायतें हैं। दादरा और नगर हवेली में दो चरण की व्यवस्था है—वरिष्ठ पंचायत और ग्राम पंचायत। पांडिचेरि में अभी तक सिर्फ कम्यून पंचायतें हैं। मेघालय, नागालैंड, लक्षद्वीप और मिजोरम में अभी तक पंचायती राज स्थापित नहीं हुआ।

मार्च, 1976 के अन्त तक देश में 2,21,727 ग्राम पंचायतें, 4022 पंचायत समितियां और 252 जिला परिषदें थीं। इनके अन्तर्गत 44 करोड़ 18 लाख जन-संख्या और 5 लाख 84 हजार गांव आते हैं। इस प्रकार 99% ग्रामीण आबादी और लगभग 97% गांव पंचायतों के अन्तर्गत आ गए हैं। औसतन एक ग्राम पंचायत के अन्तर्गत 1,990 लोग आते हैं और एक पंचायत के अन्दर 2 से लेकर 6 गांव होते हैं।

ग्राम पंचायत

ग्राम पंचायत, जो ग्राम सभा की कार्यकारी निकाय है, ग्राम सभा द्वारा चुनी जाती है। पंचायत के 5 से 31 तक सदस्य होते हैं (पंजाब में 5 से 11, तमिलनाडु में 5 से 15 और उत्तर प्रदेश में 16 से 31)। पंचायत के सदस्य पंच कहलाते हैं और गुप्त मतदान से चुने जाते हैं। सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में अनुसूचित जातियों, आदिम जातियों, कमजोर वर्गों और अल्प संख्यक वर्गों को विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाता है। ग्राम पंचायत का प्रमुख सरपंच कहलाता है। कुछ राज्यों जैसे बिहार, हरियाणा, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश आदि में सरपंच सीधे तौर पर चुना जाता है। कुछ राज्यों में ये पंचों द्वारा चुने जाते हैं।

पंचायत समिति

पंचायत समिति पंचायती राज का बीच का चरण है। यह संस्था सभी राज्यों में विकास खंड स्तर पर काम करती है। गुजरात और कर्नाटक में ऐसा नहीं है। वहां यह तालुक स्तर पर है। मध्य प्रदेश में इसे जनपद पंचायत कहते हैं। तमिलनाडु में इसे 'पंचायत यूनियन परिषद', उत्तर प्रदेश में 'क्षेत्र समिति' और पश्चिमी बंगाल में 'आंचलिक परिषद' कहा जाता है।

पंचायत समिति में आम तौर पर इसके अन्तर्गत पंचायतों के सरपंच होते हैं या पंचायतों के पंच अप्रत्यक्ष रूप से इसके सदस्य चुनते हैं या इसमें कुछ सीधे निर्वाचित सदस्य होते हैं। इसके साथ ही कमजोर वर्गों जैसे महिलाओं, अनुसूचित जातियों और आदिम जातियों को विशेष प्रतिनिधित्व मिलता है। इसका गठन अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग है। पंचायत समिति का अध्यक्ष प्रधान कहलाता है। कुछ राज्यों में इसे अध्यक्ष कहा जाता है, राजस्थान में वह प्रधान और बिहार व उत्तर प्रदेश में प्रमुख कहलाता है।

जिला परिषद

पंचायती राज का तीसरा चरण जिला स्तर पर जिला परिषद है। इसे आम तौर पर 'जिला परिषद' ही कहा जाता है। कर्नाटक और तमिलनाडु में इसे जिला विकास परिषद कहा जाता है।

जिला परिषद में पंचायत समितियों के प्रतिनिधि होते हैं। कुछ कमजोर वर्गों के विशेष प्रतिनिधि भी होते हैं। सभी राज्यों में पंचायत समिति के प्रधान जिला परिषद के पदेन सदस्य होते हैं।

कार्य और अधिकार

ग्राम पंचायत के कार्य दो तरह के होते हैं—एक अनिवार्य और दूसरे इच्छानुसार। इनका क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है, जिसमें प्रशासन, सांस्कृतिक, सामाजिक, कृषि सम्बन्धी और विकास कार्य शामिल हैं। इनके अन्तर्गत सफाई, संरक्षण, फसल प्रयोग और कुटीर उद्योग को बढ़ावा देने से लेकर मृत्यु और जन्म का पंजीकरण तक के कार्य आते हैं। इनके अलावा ये राज्य सरकारों द्वारा निदेशित सभी अतिरिक्त कार्य करती हैं।

राज्य सरकारों ने ग्राम पंचायतों को कुछ कर लगाने का अधिकार दिया है, जो अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग है। पंचायत की आय के प्रमुख स्रोत हैं सम्पदा पर कर, भूमि राजस्व पर उपकर या किराया, गाड़ियों पर कर और व्यवसाय कर। पंचायतों को कुछ अन्य शुल्क लगाने का अधिकार दिया गया है, जैसे चुंगी, दुकानों पर कर, विश्राम-गृहों के लिए शुल्क, जल-मल निकासी पर शुल्क, बिजली शुल्क, पानी शुल्क, पंचायत द्वारा दी गई अन्य सेवाओं पर शुल्क।

पंचायत समितियों का प्रमुख कार्य विकास कार्य है। ग्रामीण विकास से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों के लिए वे सीधे तौर पर उत्तरदायी होती हैं। विकास खंड या तालुक के लिए विकास कार्यक्रम तैयार करती हैं। कुछ विशिष्ट शासी कार्यों जैसे प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई और संचार के बारे में उन्हें जिम्मेदारी सौंपी जाती है। ये पंचायत के कार्यों की देख-रेख करती हैं और उनके आय के पैसे की जांच करती हैं।

पंचायत समितियों को धन विकास खंड से मिलता है। कुछ कार्यों के लिए राज्य सरकारों द्वारा दिया धन पंचायतों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है। इसके अलावा उन्हें भू-राजस्व का अंश और राज्य सरकार से अनुदान मिलता है। कुछ राज्यों में पंचायत समितियों को कर लगाने का अधिकार दिया गया है।

पंचायत समितियां अलग-अलग विशिष्ट कार्यों के लिए स्थायी समितियां बनाकर उनके द्वारा कार्य करती हैं। ये काम हैं—उत्पादन कार्यक्रम, समाज कल्याण, समाज के कमजोर वर्गों की उन्नति आदि। कार्यक्रमों का अमल खंड विकास अधिकारी करते हैं जो प्रमुख शासी अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं। कर्मचारियों में प्रसार अधिकारी, ग्राम सेवक आदि होते हैं।

जिला परिषद के कार्य और अधिकार राज्यों में अलग-अलग हैं। कर्नाटक और तमिलनाडु में जिला परिषद यानी जिला विकास परिषद समन्वय संस्था के रूप में काम करती है और पंचायत समितियों के बीच में तालमेल रखती है। साथ ही यह प्रशासन को विकास कार्यक्रमों के बारे में सलाह देती है। इनके अतिरिक्त कुछ राज्यों में जिला परिषद माध्यमिक, व्यावसायिक और औद्योगिक विद्यालयों की स्थापना, इन्हें चालू रखने और उनके विकास का कार्य करती है। महाराष्ट्र में जिला परिषद सबसे अधिक शक्तिशाली संस्था है और यहां इसे नियोजन और विकास सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हैं। गुजरात, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में जिला परिषदों को विभिन्न क्षेत्रों में शासी अधिकार भी मिले हैं।

जिला परिषदों के वित्त का साधन है राज्य सरकारों द्वारा दिया गया अनुदान और कुछ कर, जिन्हें लगाने का अधिकार उन्हें प्राप्त है। कुछ राज्यों में जिला परिषदों को शुल्क लगाने का अधिकार है।

पंचायत समितियों की तरह जिला परिषद की भी अलग-अलग कार्यों जैसे शिक्षा, आयोजन, उद्योग आदि के लिए स्थायी समितियां होती हैं।

सुधार के लिए सुझाव

भारत में राष्ट्र निर्माण में स्वशासी संस्थाओं के इतिहास में पंचायती राज का स्थान महत्वपूर्ण है। लेकिन यह देखा गया है कि भले ही सैद्धान्तिक रूप में यह सही है कि पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीण, सामाजिक-आर्थिक विकास की एजेंसी हैं पर वास्तव में ऐसा नहीं है। मौजूदा पंचायती राज संस्थाओं का गठन और काम ऐसा होता है कि उन्हें राज्य सरकारों के न्यायिक, विधायी, वित्तीय और प्रशासकीय नियंत्रण में काम करना पड़ता है। अगर इन्हें सही रूप में स्वायत्त शासी संस्थाओं का रूप देना है तो इन्हें वास्तविक अधिकार और कार्य सौंपने होंगे। पांचवीं योजना के मसौदे में पंचायती राज की भूमिका पर जोर दिया गया है। साथ ही न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों जैसे ग्रामीण सड़क, स्वास्थ्य केन्द्र, जल आपूर्ति आदि में इनका सक्रिय योग होगा।

उपरोक्त सुझावों के अलावा पंचायती राज के बारे में कुछ अन्य सुझाव इस प्रकार हैं :—

(क) विभिन्न स्तरों पर चुनाव के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार हैं। ग्राम पंचायत जनता के प्रतिनिधियों द्वारा चुनी जाती है। पंचायत समिति और जिला परिषद अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। इन दो संस्थाओं के निर्वाचन मण्डल को बढ़ाने की आवश्यकता है। यदि आवश्यक हो तो इन्हें भी सीधे तौर पर निर्वाचित बनाना चाहिए। यह भी देखने की बात है कि राज्य सरकारों और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों द्वारा बनाए गए कानूनों के अनुसार इनके चुनाव नियमित रूप से समय पर कराये जाएं।

(ख) पंचायती राज संस्थाओं के काम में एक बड़ी रुकावट वित्तीय साधन पर्याप्त न होने के कारण आती है। उनके वित्तीय साधन बढ़ाए जाएं, जिससे वे राष्ट्र नियोजन के कार्य में केन्द्र और राज्य सरकारों के साथ सहयोगी रूप से कार्य कर सकें।

(ग) ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद सभी स्तरों में उपयुक्त प्रशासकीय तंत्र देने की आवश्यकता है, जिससे वे अपना कार्य आसानी से कर सकें। जिला परिषद में जिला शासी अधिकारी या जिला विकास अधिकारी हो जिसका स्तर जिला कलक्टर के समकक्ष हो। साथ ही विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ और आवश्यक कर्मचारी होने चाहिए। इसी प्रकार विभिन्न विषयों के जानकार अधिकारी पंचायत समितियों और ग्राम पंचायतों में पूरे समय सचिव के रूप में होने चाहिए। ●

अनुवादक: विनय कुमार भटनागर

शानदार उदाहरण

राजस्थान के पाली जिले के जैतारण से 5 मील दूर फूलमाल गांव के सार्वजनिक कुएं से हरिजनों को पेयजल प्राप्त करने की समुचित व्यवस्था बड़े सौहार्दपूर्ण वातावरण में कर दी गई है।

हरिजन स्वयं ही उक्त सार्वजनिक कुएं से पानी न भर कर अलग कुएं से भरते थे। लेकिन जब यह जानकारी अधिकारियों को मिली तो दो हरिजनों को सार्वजनिक कुएं से पानी भरवा कर छुआछूत को बढ़ावा देने वाली लोगों की प्रवृत्ति को समाप्त किया गया।

अब आँख मिचौली नहीं चलेगी

अब किसान से आँख मिचौली
नहीं चलेगी,
दाल मुनाफ़ा खोरों की अब
नहीं गलेगी
अब किसान की मेहनत का फल
सस्ते दामों नहीं बिकेगा
मन्डी में अब कोई उसको
छल न सकेगा
खाद्य निगम अब दोस्त है उसका
क्या घबराना
फ़र्ज है जिसका उचित मूल्य
उसको दिलवाना

रक्षा कर किसान के हित की
अपना धर्म निभाना

किसान का सच्चा साथी
सच्चा हमदम

भारतीय खाद्य निगम
राष्ट्र की सेवा मे संलग्न

सूखे के खिलाफ लड़ाई

देश में 20 प्रतिशत ऐसा क्षेत्र है, जो कि समय-समय पर सूखे की चपेट में आता रहता है। इससे इन क्षेत्रों के लिए न केवल अनेक मुसीबतें पैदा होती हैं बल्कि कृषि पैदावार और पशुधन की भी अपार हानि होती है। सूखा पड़ने के बाद सरकार द्वारा राहत पहुंचाने पर अत्यधिक राशि खर्च की गई है। इन क्षेत्रों के लोगों को उपयुक्त समय पर अपेक्षित सहायता तो पहुंचाई गई है लेकिन इस राशि से इन क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ाने की मूलभूत समस्या को हल करने और मानव तथा मवेशियों पर सूखे की गम्भीरता के प्रभाव को कम करने में मदद नहीं मिली है। जंगलात काटने और बहुत अधिक चराई होने के कारण भारी भू-कटाव हुआ है और भूमि की उत्पादकता में कमी हुई है। मानव और मवेशी की आबादी बढ़ने के कारण खेती के लिए अनुपयुक्त सीमान्त भूमि पर भी खेती की गई है। इन क्षेत्रों में से बहुत ही कम किसान बेहतर ढंग से जीवन निर्वाह करने में समर्थ हुए हैं। इन क्षेत्रों के विकास का कार्य एक बहुत ही चुनौती वाला कार्य है और सरकार द्वारा सूखा-प्रवृत्त क्षेत्र कार्यक्रम की सेन्ट्रल सेक्टर स्कीम के माध्यम से इस दिशा में मामूली शुरूआत की गई है।

यद्यपि यह कार्यक्रम चौथी योजनावधि से चल रहा है लेकिन पांचवीं योजना के दौरान इस कार्यक्रम ने समन्वित क्षेत्र विकास कार्यक्रम का रूप ले लिया है। वर्षा की औसत, सूखे के प्रभाव क्षेत्र, सिचाई की सुविधाओं आदि के आधार पर इस कार्यक्रम में सम्मिलित करने के लिए देश के 74 जिलों के क्षेत्रों को चुना गया है। ये जिले 13 राज्यों में हैं। देश की 12 प्रतिशत जनसंख्या इन क्षेत्रों में रहती है। कार्यक्रम के मूलभूत उद्देश्य इस प्रकार हैं :—

(1) सूखे के प्रभाव को कम करना।

(2) समाज के कमजोर वर्गों के लोगों की आय में स्थिरता लाना।

(3) पारिस्थितिकी संतुलन बहाल करना।

जगदीश प्रसाद शर्मा

नीति

अच्छी वर्षा के वर्षों में अधिक उत्पादन किया जाए और जब वर्षा पर्याप्त नहीं होती है, तब क्षति को अत्यधिक कम किया जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति वैज्ञानिक ढंग से भूमि तथा नमी संरक्षण के उपाय अपना कर की जाती है ताकि इस क्षेत्र में पानी की प्रत्येक बूंद का अनुकूलतम उपयोग किया जा सके। अपर्याप्त वर्षा या वर्षा ऋतु में लम्बे समय तक सूखे की लहर रहने के कारण कम पैदावार से होने वाली हानि को कम करने के लिए थोड़ी अवधि और सूखा-रोधी किस्मों की फसल को बढ़ावा दिया जाता है। क्योंकि इन क्षेत्रों में कृषि का विकास करने की कुछ मजबूरियां हैं इसलिए किसानों को पशुपालन, मुर्गीपालन, भेड़-पालन, रेशम के कीड़े पालने और बागवानी आदि जैसे धन्धे अपनाने के लिए प्रेरित किया जाता है। इससे उनकी आय बढ़ाने और अकेले कृषि पर किसानों की निर्भरता कम करने में मदद मिलती है। ऐसी सहायक गतिविधियों के लिए प्रशोधन और हाट व्यवस्था समेत व्यापक पैकेज सुविधाओं का विकास किया गया है ताकि किसानों को अपने घरों पर अपनी पैदावार का उपयुक्त दाम प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े। कार्य योजना परियोजना-क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर और पहले से प्राप्त विकास स्तर और उसमें चल रही अन्य विकास सम्बन्धी गतिविधियों को ध्यान में रखकर तैयार की जाती है। ग्रामीण स्तर पर योजना बनाने की कोशिश की गई है और क्षेत्र अधिकारियों को स्थानीय वातावरण के उपयुक्त योजना बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। माडल योजनाएं सुलभ करने की इसलिए कोशिश नहीं की जाती है क्योंकि ये माडल योजनाएं स्थानीय परिस्थितियों के उपयुक्त नहीं भी हो सकती हैं। इस नीति से जिला स्तर पर योजना बनाने में बहुत अधिक बढ़ावा मिला है।

जल विभाजक यूनिट

किसी प्रशासनिक यूनिट को योजना यूनिट के रूप में अपनाने के बजाय जल-विभाजक (वाटरशेड) की वैज्ञानिक यूनिट की योजना बनाने और कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए यूनिट के रूप में चुना गया है। व्यापक विकास के लिए लगभग 10,000 एकड़ क्षेत्र के 5 से 10 जल विभाजक चुने गए हैं और उन का भूमि तथा नमी संरक्षण उपायों के अधीन पूरी तरह उपचार किया जाता है। भूमि का सर्वेक्षण कराया जाता है जिससे भूमि के प्रयोग का चित्र मिलता है और इसे आधार मान कर वनरोपण के लिए उपयुक्त क्षेत्रों को वन के अन्तर्गत और चरागाह विकास के लिए उपयुक्त क्षेत्रों को चरागाहों के अन्तर्गत लाया जाता है। मरु भूमि में गहन खेती करने की विधियां लागू की जाती हैं और लघु सिंचाई कार्यों के लिए सभी उपयुक्त स्थानों पर खेती की जाती है। चुनींदा जलविभाजकों की परितृप्ति हो जाने के बाद कार्यक्रम की कार्यान्विति अन्य जल विभाजकों में की जाती है। इस वैज्ञानिक पहुंच से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

प्रबन्ध नीति

इस कार्यक्रम का शीर्ष संगठन कृषि तथा सिंचाई मन्त्रालय के ग्रामीण विकास विभाग में सूखा-प्रवृत्त कार्यक्रम प्रभाग है। यह प्रभाग देश भर में कार्यक्रम की योजना बनाने और उसकी कार्यान्विति से सम्बन्धित कार्य देखता है। राज्य स्तर

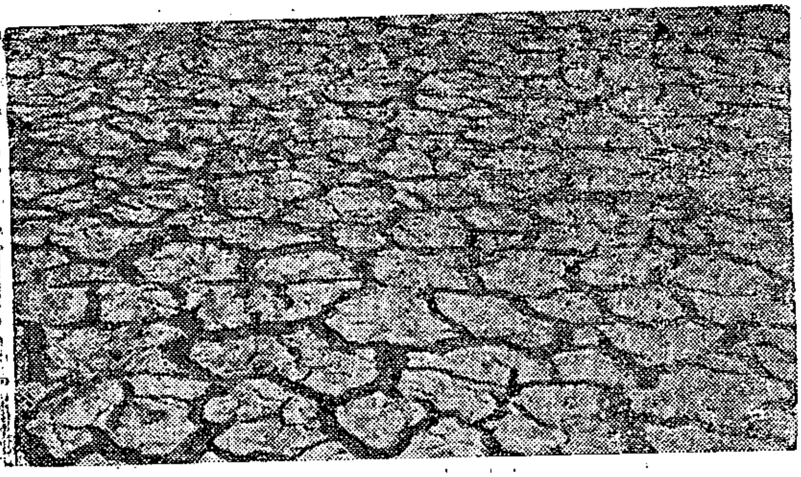

सूखा धरती की क्या हालत बना देता है

र योजना, सूचना संग्रह और मूल्यांकन सेल स्थापित किए गए हैं। परियोजना स्तर पर अधिकांश परियोजनाओं में सूखा-प्रवृत्त क्षेत्र विकास एजेन्सियां स्थापित की गई हैं जो कि सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत हैं। इन एजेंसियों के अध्यक्ष जिले के कलक्टर या जिला विकास अधिकारी होते हैं और कार्यान्वियन विभागों के जिला स्तर के सभी अधिकारी और कुछ गैर सरकारी व्यक्ति इनके सदस्य होते हैं। एजेंसी परियोजना की योजना बनाने, समन्वय करने और उसे कार्यान्वित करने के लिए जिम्मेदार होती है। क्षेत्र में ये योजनाएं मौजूदा सरकारी विभागों द्वारा कार्यान्वित की जाती हैं। ये विभाग अपने सम्बन्धित विभागों के अध्यक्ष के अधीन कार्य करते रहते हैं। यदि कार्यक्रम के अधीन प्रस्तावित अतिरिक्त कार्यों को कार्यान्वित करने के लिए मौजूदा स्टाफ पर्याप्त नहीं है तो अतिरिक्त स्टाफ की मंजूरी दी जाती है।

जिला स्तर पर कार्यक्रम चलाने के लिए एजेंसी की स्थापना करना एक नई बात है। इससे जिला स्तर पर अच्छी योजना बनाने और कार्यान्वियन अधिकारियों के बीच बेहतर समन्वय करने में मदद मिली है। मिल जुल कर कार्य करने की भावना इस नई संस्था की स्थापना में मुख्य प्रेरणा रही है। ये एजेंसियां सहकारी ऋण संस्थाओं, वाणिज्य वित्त एजेंसियों और ग्राम विकास के क्षेत्र में कार्य कर रही स्वयं सेवी एजेंसियों से सहयोग प्राप्त करने में समर्थ हुई हैं। राज्य स्तर से मार्ग-दर्शन प्राप्त करने की आदत शिथिल पड़ गई है और अब जिला स्तर पर सीधे

धरती की प्यास बुझने से ही कुछ संभव है

एक दूसरे की सहायता करने की भावना ज्यादा है। इसके परिणामस्वरूप परियोजना क्षेत्र की विकास सम्बन्धी जरूरतें एजेंसियों द्वारा तैयार की गई कार्य-योजना में पूरी तरह प्रतिविम्बित होती हैं। एजेंसियों की बैठकों में काफी स्पष्ट चर्चा होती है और इन बैठकों में अधिकांश समस्याओं को कार्रवाई करने के लिए चुना जाता है।

इन एजेंसियों के लिए स्टाफ की व्यवस्था की गई है। मुख्य अधिकारी एक परियोजना निदेशक हैं जो कि दल के नेता के रूप में कार्य करते हैं। इनकी सहायता के लिए परियोजना अर्थ-शास्त्री होता है। यह अधिकारी योजनाओं का आर्थिक दृष्टि से मूल्यांकन करता है और प्राथमिकताएं निर्धारित करने और साधनों के सही आवंटन में मदद करता है। वित्त संस्थानों के साथ सम्पर्क रखने और फायदा उठाने वालों की ऋण सम्बन्धी जरूरतों का अन्दाजा लगाने के लिए एक ऋण योजना अधिकारी भी है। लेखा अधिकारी हिसाब-किताब रखता है। इन अधिकारियों की सहायता के लिए अन्य स्टाफ होता है। इतने थोड़े स्टाफ के साथ इन एजेंसियों का योगदान वास्तव में प्रशंसनीय है।

इस कार्यक्रम के विषम स्वरूप को देखते हुए केन्द्रीय सूखा-प्रवृत्त क्षेत्र कार्यक्रम ने प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किया है। ऊंचे प्रबन्ध अधिकारियों और फील्ड कार्यकर्ताओं तथा कार्यक्रम से अन्ततः लाभान्वित होने वालों की प्रशिक्षण सम्बन्धी जरूरतों का अन्दाजा लगाया जाता है और देश के प्रमुख संस्थानों के साथ मिलकर सावधानी से योजना बनाने के बाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। इन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों से कार्यान्वियन अधिकारियों को प्रोत्साहित करने और कार्यक्रम के कार्यान्वियन में अधिक गतिशीलता लाने में मदद मिली है।

परियोजना क्षेत्रों में उपलब्ध साधनों के विश्लेषण के आधार पर समन्वित योजनाएं तैयार करने के लिए भूमि, जल, पशु और मानव साधनों के संरक्षण और इनका कुशल उपयोग करने में और संस्थागत संगठनात्मक अड़चनों का गहराई से अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। इसलिए, विभिन्न पहलुओं पर अनुसंधान सम्बन्धी अध्ययन शुरू किए गए हैं और इस कार्य में देश की प्रमुख अनुसंधान संस्थाओं को शामिल किया गया है। अब तक प्राप्त अनुसंधान रिपोर्टों से मूल्यवान सामग्री प्राप्त हुई है और कार्यक्रम के कामकाज में सुधार करने में मदद मिली है। अल्पकालीन और कार्योन्मुख परियोजनाओं पर बल दिया जाता है और अनुसंधान सम्बन्धी सिफारिशों को कार्यान्वित करने की दिशा में ईमानदारी से कोशिश की गई है। फसलों, भूमि, पशुओं, सस्य विज्ञान, खेती, भूमि प्रबन्ध के तरीकों, कार्यक्रमों के प्रशासन आदि जैसी उत्पादन और प्रबन्ध प्रणालियों पर हाल की खोजों से नये तौर-तरीकों और विधियों की जानकारी प्राप्त हुई है, जिनका इन क्षेत्रों के विकास के लिए उपयोग किया जा सकता है। प्रशिक्षण, अनुसंधान और मूल्यांकन का कार्यक्रम बनाने और उसका कार्यान्वयन के साथ समन्वय कर विभिन्न विधियों की उपयुक्तता जानने के लिए पूरी-पूरी कोशिश की जाती है।

कार्यक्रम के प्रमुख अंग

कार्यक्रम के कुछेक महत्वपूर्ण अंग इस प्रकार हैं—

1. **जल साधनों का विकास और प्रबन्ध**
2. **भूमि और नमी संरक्षण उपाय**
3. **सामाजिक वन और फार्म वन पर विशेष जोर देते हुए वनरोपण**
4. **चरागाहों का विकास और भेड़ पालन के विकास के साथ-साथ क्षेत्र प्रबन्ध**
5. **पशुधन विकास और डेरी विकास**
6. **फसल को नया स्वरूप देना और कृषि सम्बन्धी विधियों में परिवर्तन लाना**
7. **बागवानी, रेशम के कीड़े पालना और मछली पालन आदि जैसे गौण धन्धों का विकास**

भूमिगत जल सर्वेक्षण से जहां कहीं भूमिगत जल पाया गया है उसका कार्यक्रम में अनुकूलतम उपयोग किया जाता है। इस कार्यक्रम के अधीन कुछेक दुर्गम क्षेत्रों में व्यापक जल-भूगर्भीय सर्वेक्षण किए गए हैं और इन सर्वेक्षणों से भारी मात्रा में पेय जल के साथ गहरे जलभृत (एक्वीफर) पाए गए हैं। इनका पानी गहरे नलकूप के द्वारा निकाला जाता है। सामुदायिक आधार पर भूमिगत जल संसाधनों के प्रबन्ध को बढ़ावा दिया जाता है और इसमें समाज के कमजोर वर्गों को तरजीह दी जाती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत खुदे हुए कुओं में डीजल या बिजली से चलने वाले पम्पसेट लगाए जाते हैं, उथले नलकूप और गहरे नलकूप लगाए जाते हैं। तालाबों, जलाशयों, बांध, लिफ्ट सिंचाई योजना आदि के जरिए सतही जल के उपयोग की कोशिश की जा रही है। इस कार्यक्रम की नई बात यह है कि लघु सिंचाई योजनाओं के लिए भी कमांड एरिया विकास पर बल दिया गया है। इससे समय की भी बचत होती है और पानी का अधिक कुशलता के साथ उपयोग किया जा सकता है। इस तरह सिंचाई के अन्तर्गत लाए गए क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फसल पद्धति का सुझाव दिया जाता है और सघन तथा विस्तृत खेती शुरू की जाती है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले खासकर पिछड़े क्षेत्रों में 23 मझोली सिंचाई परियोजनाएं मंजूर की गई हैं। इसके लिए शत प्रतिशत केन्द्रीय अनुदान दिया जाएगा। इससे लगभग 59,000 हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई हो सकेगी। इन योजनाओं से पर्याप्त लाभ पांचवीं योजना के अंत तक मिलना शुरू हो जाएगा। इन परियोजनाओं का चुनाव करते समय अल्पकालीन योजनाओं को तरजीह दी गई है जिससे समाज के कमजोर वर्गों को फायदा पहुंचे।

भूमि और नमी संरक्षण उपाय जल विभाजक आधार पर तैयार किए गए हैं। इन योजनाओं के कार्यक्षेत्र से सरकारी और जनता की भूमि छोड़ देने की पहले से चली आ रही प्रथा को बन्द कर दिया गया है और जिन क्षेत्रों में भूमि और नमी संरक्षण सम्बन्धी उपाय किए जाने हैं, उन सभी क्षेत्रों में ये उपाय किए जा रहे हैं। इन कार्यों को भूमि सर्वेक्षण के आधार पर किया जाता है।

देश के सूखा-प्रवृत्त क्षेत्रों में सामान्यतः कोई जंगल और पेड़-पौधे नहीं हैं। इनके न होने के कारण इन क्षेत्रों में पारिस्थितिकी ह्रास हुआ है। इन क्षेत्रों में आंशिक पारिस्थितिकी संतुलन लाने के लिए व्यापक रूप से वन लगाने का कार्यक्रम तैयार किया गया है। जल्दी उगने वाली ऐसी जातियों पर विशेष बल दिया जाता है जिनसे गांव वालों के लिए ईंधन तथा

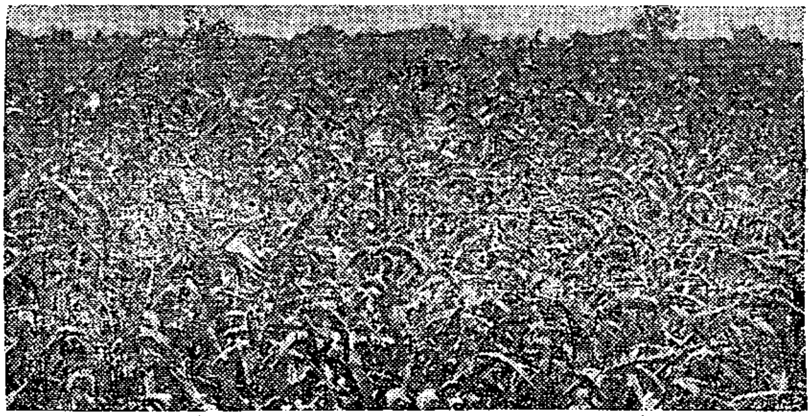

पानी मिला धरती लहराई

चारा मिल सके, हवा का वेग रूक सके, छाया मिले तथा ग्रामीण जंगलों की व्यवस्था की जा सके।

शुष्क भूमि चरागाहों के विकास का एक अत्यधिक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम शुरू किया गया है। यह कार्यक्रम भेड़ पालन के विकास के साथ सम्बद्ध है। चरागाहों की कमी से देश में बढ़िया नस्ल के पशु कम होते जा रहे हैं। यह आशा की जाती है कि अच्छे चरागाहों की व्यवस्था करने से पशुओं की उत्पादकता बढ़ जाएगी और भेड़ों की ऐसी नस्लें हो जाएंगी जिनसे ऊन भी अधिक मिलेगी और मांस भी। चरागाह विकास से भूमि और नमी संरक्षण उपाय करने में मदद मिलेगी।

ये क्षेत्र देश के डेरी और अच्छी नस्ल के भारवाही पशुओं के घर हैं। इन पशुओं की नस्ल सुधारने और उनके स्वास्थ्य के लिए व्यापक प्रवन्ध करने से किसानों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत खोला जा सकता है।

गौण धन्धों पर जोर देने के बावजूद इन क्षेत्रों के निवासियों के लिए खेती सबसे महत्वपूर्ण धन्धा बना रहेगा। शुष्क-भूमि पर खेती के बारे में उपलब्ध अनुसंधान परिणामों का उपयोग करते हुए विशिष्ट फसल पद्धति और विशेष तरीके निकाले गए हैं और विस्तार कार्यकर्ताओं के माध्यम से इनका प्रचार किया जा रहा है। फसलें उगाने की योजना सूखे की लहर के जोखिम को ध्यान में रख कर और ज्यादा से ज्यादा मवेशियों के लिए भूसे की व्यवस्था कर बनाई जाती है। दालों और मोटे अनाज की उन्नत किस्मों की खेती पर विशेष बल दिया जाता है। मूंगफली जैसी नकदी फसलों को भी लोकप्रिय बनाया जा रहा है। इस क्षेत्र में बहु-उद्देश्यीय-प्रदर्शन, किसानों को प्रशिक्षण और उन्हें उन्नत फार्म औजार सुलभ करने की नीति रही है।

इन क्षेत्रों में भूमि की सीमित उत्पादकता को देखते हुए यहां के लोगों की आय में वृद्धि करना और वर्ष भर उनके लिए रोजगार की व्यवस्था करना आवश्यक है। पशुपालन सम्बन्धी धन्धों की व्यवस्था करने पर अधिक ध्यान दिया जाता रहा है। व्यापक डेरी विकास कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। बागवानी, रेशम के कीड़े पालने और मछली पालन के लिए उपयुक्त क्षेत्र में किसानों को इन धन्धों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। उन्हें बुनियादी सुविधाएं, प्रशिक्षण और आवश्यक उपकरण आदि खरीदने के लिए सहायता दी जाती है।

योजना व्यय

केन्द्रीय सरकार ने पांचवीं योजना में इस कार्यक्रम के लिए 181.5 करोड़ रुपए की व्यवस्था की थी। इस राशि में से 24 करोड़ रुपए की राशि मझोली सिंचाई परियोजनाओं पर खर्च करने के लिए रखे गए और केन्द्रीय सूखा-प्रवृत्त क्षेत्र कार्यक्रम सेल, प्रशिक्षण और अनुसन्धान पर खर्च करने के लिए 3 करोड़ रुपए रखे गए। राज्य सरकारें बराबर का अंशदान देती हैं और उनके अंश को ध्यान में रखते हुए इस कार्यक्रम पर कुल सरकारी खर्च 330 करोड़ रुपए होगा। वित्तीय संस्थाओं से इस कार्यक्रम को लगभग 170 करोड़ रुपए का उधार मिलने की सम्भावना है। अतः पांचवीं योजनावधि में कुल खर्च 500 करोड़ रुपए के आसपास हो जाएगा।

परियोजना क्षेत्रों के लिए धनराशि का आवंटन इस कार्यक्रम के अधीन जिलों के कार्यक्षेत्र के आधार पर क्रमिक स्तर पर किया गया है। 75 प्रतिशत और इससे अधिक कार्यक्षेत्र वाले जिलों के लिए 6 करोड़ रुपए, 50 प्रतिशत से 75 प्रतिशत कार्यक्षेत्र वाले जिलों के लिए 5 करोड़ रुपए और 50 प्रतिशत से कम कार्यक्षेत्र वाले जिलों के लिए 4 करोड़ रुपए का सरकारी परिव्यय बताया गया गया है। जिन जिलों में कार्यक्षेत्र में केवल कुछेक तालुके हैं और जिन्हें मुख्य सूखा-प्रवृत्त क्षेत्र कार्यक्रम जिलों के आसपास का निकटस्थ क्षेत्र समझा जाता है, उन्हें 30 लाख रुपए प्रति तालुक की दर से आवंटन किया गया है। तथापि, विश्व बैंक सहायता के अन्तर्गत आने वाले जिलों को प्रति जिला 8 करोड़ रुपए आवंटित किए गए हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

चौथी योजनावधि के दौरान 92 करोड़ रुपए की राशि खर्च की गई थी। इससे 1500 लाख मानव दिन रोजगार पैदा हुआ। लगभग 1.64 लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई हुई, लगभग 4.6 लाख हेक्टेयर भूमि पर भू-संरक्षण उपाय किए गए और लगभग एक हेक्टेयर क्षेत्र में वनरोपण किया गया। 9000 किलोमीटर सड़कों का निर्माण भी हुआ। पांचवीं योजनावधि के दौरान जुलाई, 1977 के अन्त तक कुल खर्च 131 करोड़ रुपए हुआ है। इस राशि में से लगभग 50 प्रतिशत सिंचाई पर खर्च हुआ, 16 प्रतिशत भू-संरक्षण और शुष्क भूमि खेती, 14 प्रतिशत वनरोपण, चरागाह विकास और 9 प्रतिशत पशुपालन पर खर्च हुआ। लगभग एक लाख हेक्टेयर अतिरिक्त सिंचाई क्षमता तैयार की गई। लगभग 4.3 लाख हेक्टेयर भूमि पर भू और नमी संरक्षण उपाय किए गए। लगभग 1.35 लाख हेक्टेयर भूमि पर नए पेड़-पौधे लगाए गए। 23,000 हेक्टेयर क्षेत्र में सामाजिक वन और 60,000 हेक्टेयर भूमि पर चरागाहों का विकास किया गया। अनुमान है कि पांचवीं योजनावधि के पहले तीन वर्षों के दौरान लगभग 1,000 लाख मानव दिन रोजगार पैदा किया गया है। 46,000 से भी अधिक मिले-जुले प्रदर्शन किए गए हैं। लगभग एक हजार दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियां और 100 भेड़ उत्पादक सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं और 10,000 से भी अधिक दुधारु पशु बांटे गए हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत हुई उल्लेखनीय उपलब्धि का केवल एक उदाहरण यह है कि पश्चिमी राजस्थान में प्रतिदिन लगभग एक लाख लिटर दूध इकट्ठा करने का लक्ष्य प्राप्त किया गया है। रायलसीमा क्षेत्र में एकत्रित दूध की मात्रा 1974-75 के अन्त में प्रतिदिन 10,000 लिटर से बढ़कर 1976 के अन्त में प्रतिदिन 54,000 लिटर हो गई है।

[शेष पृष्ठ 28 पर]

ग्रामीण समस्याओं से मोर्चा

बेनी कृष्ण शर्मा

सन 1947 में राजनीतिक स्वाधीनता पाने के पश्चात भारत ने आर्थिक स्वाधीनता की उपलब्धि पर ध्यान केन्द्रित किया। ग्राम-बहुल देश होने के कारण यह स्वाभाविक था कि ग्राम-विकास को देश की आर्थिक समृद्धि सम्बन्धी योजनाओं में प्राथमिकता दी जाती। इस आवश्यकता की प्रभावकारी पूर्ति के रूप में मार्च सन 1950 में योजना आयोग का गठन किया गया।

पंचवर्षीय योजनाएं

देश के सर्वतोमुखी विकास के लिए व्यूह-रचना का मूल आधार यह बनाया गया कि एक व्यापक सर्वांगीण कार्यक्रम बनाया जाए तथा उसे पांच वर्ष की अवधि में कार्यान्वित किया जाए। इस व्यापक कार्यक्रम में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि जीवन के सभी पहलुओं को दृष्टिगत रखकर एक संतुलित विकास-कार्यक्रम तैयार किया जाना था, जिसके द्वारा सामाजिक न्याय संभव किया जा सके। इसके परिणामस्वरूप पहली पंचवर्षीय योजना बनाई गई जिस पर सन 1951 के आरम्भ से काम शुरू कर दिया गया। अभी तक चार पंचवर्षीय योजनाओं का काम पूरा हो चुका है तथा पांचवीं पंचवर्षीय योजना के चौथे वर्ष का काम चल रहा है। छठी पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में अभी से सोच-विचार आरम्भ हो गया है। हमारे मुख्य उद्देश्य हैं गरीबी का उन्मूलन तथा आत्म-निर्भरता की उपलब्धि।

वार्षिक योजनाएं

अनुभवों ने हमें बताया है कि पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में जिन अनुमानों को कार्यक्रम का आधार बनाया जाता रहा है वे खरे नहीं उतरते थे, जिसके फलस्वरूप योजना के अंत तक उसमें भारी फेर-बदल करना पड़ता था। विभिन्न समस्याएं, जिनकी आरम्भ में कल्पना भी नहीं की जा सकती, बीच में उपस्थित हो जाती हैं जिससे मूल योजना अस्त-व्यस्त हो जाती है। ऐसी अवांछनीय स्थिति से बचने के लिए आवश्यक समझा गया कि पंचवर्षीय योजना को वार्षिक योजना के रूप में पांच खंडों में बांट दिया जाए। इसके अनुसार अब प्रति वर्ष के आरम्भ में ही सारी समस्याओं तथा स्थितियों का यथार्थवादी मूल्यांकन कर लिया जाता है तथा उसके आधार पर वित्तीय प्रावधानों तथा भौतिक लक्ष्यों में तत्कालीन स्थितियों तथा विगत कार्यों के प्रकाश में समुचित संशोधन कर दिया जाता है।

सामुदायिक विकास

ग्रामीण विकास के लिए तैयार की गई पहली ठोस योजना सामुदायिक विकास की थी। इसका उद्देश्य ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक जीवन के कायाकल्प की प्रक्रिया आरम्भ करना था। इसके कार्यक्रमों में एक ओर कृषि, बागवानी, पशुपालन, मछली पालन, वन और ग्रामीण तथा कुटीर उद्योगों का विकास था, तो दूसरी ओर स्वास्थ्य-संवर्धन, सफाई, संचार, शिक्षा तथा समाज-शिक्षा थे। जिन मुख्य सिद्धान्तों पर यह कार्यक्रम आधारित था, वे थे स्थानीय उद्योग तथा सामुदायिक कार्यान्वयन। जन-सहयोग उनकी प्रतिनिधि संस्थाओं के माध्यम से प्राप्त किया जाता था। आर्थिक गतिविधियों के लिए सहकारी संस्थाओं तथा सामाजिक और कल्याण-कार्यक्रमों के लिए पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्गठित किया गया तथा उनकी पुनर्प्राणप्रतिष्ठा की गई। इसका उद्देश्य इन दोनों संस्थाओं को लोकमत को प्रतिबिम्बित करने वाले मंच का रूप देना था।

देश में पहली बार इतने विशाल पैमाने पर तथा इतनी व्यापक प्रकृति के कार्यक्रम की परिकल्पना की गई थी। इसकी योजना बनाने और उसके कार्यान्वयन इन दोनों के ही लिए प्रभावकारी तथा तीव्र गति की अपेक्षा थी। इसके लिए प्रशासनिक इकाई के रूप में जिलों का क्षेत्रफल आवश्यकता से कहीं अधिक बड़ा समझा गया। अतः इस प्रस्तावित कार्यक्रम की मूल इकाई के रूप में साठ हजार से सत्तर हजार तक की जनसंख्या वाले सौ गांवों को लिया गया और उन्हें राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंड का नाम दिया गया। इस समय समस्त देश में ऐसे 5,026 खंड हैं।

इस कार्यक्रम का अंतिम लक्ष्य दस वर्ष की अवधि में ग्रामीणों को आत्मनिर्भर बना देना था। तदनुसार, खंड के प्रथम चरण की आयु सीमा पांच वर्ष की होनी थी। इसके पश्चात पांच वर्ष के लिए उसे सघन विकास कार्यों से भरे विकास के दूसरे चरण से गुजरना था। दस वर्ष पूरे होने पर अवसंरचना के विकास के लिए दी जाने वाली अधिकांश आर्थिक सहायता बन्द करके उसके स्थान पर रख-रखाव के लिए अनुदान दिया जाना था। आशा की जाती थी कि दस वर्ष के दौरान ग्रामीण जनता अपनी संस्थाओं के आर्थिक तथा अन्य मोर्चों को भी स्वयं संभाल पाने में सक्षम हो जाएगी।

विकास खंडों के लिए जिन कार्यकर्ताओं की व्यवस्था की गई उनमें खंड विकास अधिकारी, सहायक खंड विकास

अधिकारी तथा ग्राम सेवक थे। इनमें खंड विकास अधिकारी का कार्य संयोजक का था। इसमें उसे सहायक विकास अधिकारियों की सहायता प्राप्त थी, जो अपने-अपने कार्यों के विशेषज्ञ थे। प्रत्येक विषय जैसे कि कृषि, बागवानी, पशुपालन तथा दुग्ध उत्पादन, सहकारिता, पंचायती राज, सामाजिक शिक्षा, सामान्य शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सफाई और ग्रामीण कार्यों के लिए एक-एक सहायक खंड विकास अधिकारी की नियुक्ति की गई। उनके अधीन ग्राम-स्तर पर ग्राम सेवकों को रखा गया, जिन पर छह हजार से सात हजार तक की कुल जनसंख्या वाले प्रायः दस गांवों की इकाई का दायित्व था। वह एक बहुउद्देश्यीय कार्यकर्ता था तथा उस पर उसके अधीन आने वाले गांवों में प्रत्येक कार्यक्रम के कार्यान्वयन का जिम्मा था। उसे ग्रामीणों का 'मित्र, दार्शनिक तथा पथ-प्रदर्शक' समझा जाता था। अमरीकी सरकार के सामुदायिक विकास विभाग के परामर्शदाता श्री आर्थर रापर के शब्दों में 'ग्राम-सेवकों का निर्माण इतिहास में वर्तमान युग के महानतम सामाजिक आविष्कार के रूप में गिना जाएगा।'

विकास खंडों का व्यय प्रथम चरण में चार लाख रुपये तथा द्वितीय चरण में बारह लाख रुपये रखा गया। इसी राशि में विकास तथा व्यवस्था दोनों के मद के व्यय सम्मिलित थे। चूंकि कार्यक्रम का आधार आत्मनिर्भरता तथा जन-सहयोग था, अतः सामुदायिक लाभ की परियोजनाओं का व्यय-भार ग्रामवासियों तथा सरकार दोनों को ही वहन करना था। ऐसी परियोजनाओं ने शीघ्र ही लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया तथा लोकप्रिय बन गई। इनके लिए गांव की जनता ने धन, वस्तुओं तथा श्रम के माध्यम से विभिन्न प्रकार के सामुदायिक कार्यों के निर्माण में खुले हृदय से सहयोग दिया। तृतीय मूल्यांकन रिपोर्ट के अनुसार जन-सहयोग का अनुपात सरकार द्वारा किए गए व्यय का 56 प्रतिशत था। किन्तु साथ ही, यह देखा गया कि विस्तार कर्मचारियों का अधिकांश समय निर्माण-कार्यों में व्यतीत हो जाता था तथा कृषि उत्पादन का कार्यक्रम गौण हो जाता था। इसके अलावा कार्यान्वयन में भौतिक तथा आर्थिक उपलब्धियों पर अत्यधिक बल दिया जाता था तथा कार्य करने की नई पद्धति के सम्बन्ध में लोगों को शिक्षित करने तथा राष्ट्रीय और राज्य स्तर की योजनाओं की व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रीय विस्तार सेवा को विकास तथा सुधार का संपूर्ण कार्यक्रम लागू करने के प्रभावकारी अभिकर्ता के रूप में प्रयोग में लाने पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता था।

सहकारी समितियां

सहकारी संस्थाएं हमारे प्रजातन्त्र के आर्थिक स्वरूप का संकेत देती हैं। इसलिए उन्हें उचित ही ग्रामीण विकास प्रक्रिया में गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है। वस्तुतः सन 1927 में ही ग्रामीण कृषि आयोग ने भारत में सहकारिता-आन्दोलन का महत्व समझा था तथा कहा था, "यदि सहकारिता असफल हो जाती है तो उसके साथ ही ग्रामीण भारत की अन्तिम आशा समाप्त हो जाएगी।"

स्वाधीनता प्राप्ति तक सहकारिता-कार्य केवल कृषि-ऋण की व्यवस्था तक ही सीमित था। 1950-51 में ग्रामीण परिवारों को जितना ऋण दिया गया वह उनकी आवश्यकताओं का केवल तीन प्रतिशत था। अतः पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन सहकारिता आन्दोलन को अनिवार्यतः पूरी सुविधा दी गई। फलस्वरूप 1960-61 में कृषि के क्षेत्र में सहकारिता-ऋण का अनुपात बढ़ कर 25 प्रतिशत हो गया। इससे भी उत्साहवर्धक तथ्य यह था कि सहकारिता द्वारा दिए गए ऋण का 50 प्रतिशत हिस्सा-पूंजी, जमा की गई राशि तथा आरक्षित राशि के रूप में स्वयं सहकारिता स्रोतों द्वारा ही उगाहा गया था।

विशेषकर आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को ऋण, खाद, बीज, कीटनाशक दवाएं इत्यादि आवश्यक चीजें प्रदान करने के लिए सेवा सहकारियों का संगठन किया गया। इसके पश्चात सहकारिता ने अधिक बड़े क्षेत्र में कदम रखा और ऋण देने के बाद की सेवाओं, तकनीकी सहायता, वस्तुओं की आपूर्ति, विक्रय सुविधाएं बढ़ाने में भी सहयोग देना आरम्भ किया। आशा की जाती है कि पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक सहकारियों द्वारा कुल तेरह अरब रुपए दिए जा चुकेंगे, जिसमें से पांच अरब रु० कमजोर आर्थिक वर्ग को दिए जाएंगे। ये ऋण अनिवार्यतः अल्पावधि ऋण होंगे। मध्यावधि और लम्बी अवधि के ऋण देने का दायित्व भूमि-विकास बैंकों, भूमि बंधक बैंकों, कृषि पुनर्वित्त निगमों तथा राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगमों पर है।

सहकारिता ने विभिन्न क्षेत्रों की गतिविधियां हाथ में ली हैं ताकि वास्तविक रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के समस्त आर्थिक कार्यक्रमों से जुड़ सकें। इन कार्यक्रमों में दुग्ध-व्यवस्था, मुर्गीपालन, मत्स्य-पालन, हथकरघा तथा हस्तशिल्प, बिजली तथा उपभोक्ता स्टोर भी आते हैं। विशेष रूप से कमजोर वर्गों के हित को दृष्टि में रखते हुए सहकारियों का ऐसा संगठन किया गया है जिसमें केवल ग्रामीण कारीगर, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों, घुमन्तू जातियों, मछुओं, अकुशल मजदूरों, रिक्शा तथा रेड़ा चलाने वालों को ही सदस्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। सहकारियों में अनेक बुराइयां घुस आने के बावजूद वे गरीबी के विरुद्ध चलाए जा रहे संघर्ष में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं। सहकारिता के द्वारा एक महत्वपूर्ण सामाजिक लक्ष्य की उपलब्धि हो रही है। वह यह है कि लोग अपने सीमित स्वार्थों के घेरे से निकल कर अपने से बड़े किसी कारण के लिए कार्यरत हो रहे हैं।

सहकारी-ऋण-कार्यक्रम की मुख्य बाधा रही है ऋणों का चुकता न किया जाना तथा उसमें निरन्तर हो रही वृद्धि। चौथी योजना से पहले प्राथमिक सहकारी समितियों के स्तर पर बकाया का प्रतिशत 39 था, जो कि जून 1972 के अंत में बढ़कर अनुमानतः 41 प्रतिशत हो गया। बकाया के कारण सहकारी संस्थाएं ऋण देने के अधिकार से वंचित हो जाती

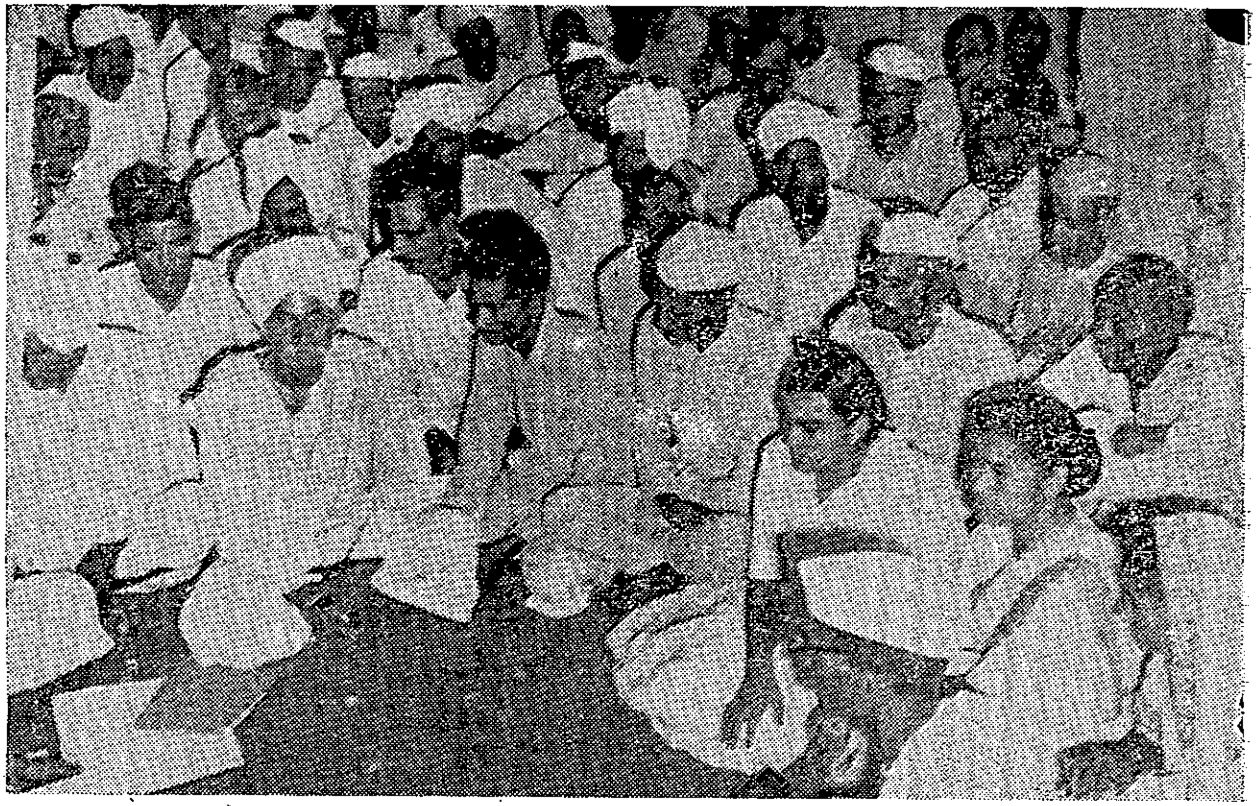

पंचायतें ग्रामीण समस्याओं का हल ढूंढने में सर्वोत्तम

थीं और ऋण सुविधाओं के अभाव में किसान सुदृढ़ आधार पर कृषि-कार्य नहीं कर पाते थे। इसका परिणाम होता था उत्पादन में ह्रास। बकाया न चुकाने वाले सदस्यों को आगे ऋण-सुविधाएं न देना तो न्यायोचित था, किंतु ऋण चुकाने वाले किसानों को तो ऋण सहायता पाने का पूरा अधिकार था। इस कठिनाई से छुटकारा पाने के लिए व्यावसायिक बैंकों को इस क्षेत्र में लाया गया। किन्तु उनकी गतिविधियां शहरों के निकटवर्ती क्षेत्रों तक ही सीमित रहीं। दूरवर्ती ग्रामों का बहुत बड़ा क्षेत्र इस सुविधा से वंचित रहा। अतः विकल्प के रूप में सहकारियों से ऋण पाने योग्य सदस्यों को निकटवर्ती सहकारी समितियों की सदस्यता दी गई।

पंचायती राज

सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ होने के साथ ही यह अधिकाधिक महसूस किया जाने लगा कि जनता का सक्रिय सहयोग पाने के लिए उनका पूरी तरह प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाओं का एक जाल-सा तैयार करना आवश्यक है। ग्राम-पंचायतें तो थीं और वे इस कार्य में सहायक भी थीं किन्तु वे ठीक-ठीक प्रतिनिधि-चरित्र की नहीं थीं तथा उनके माध्यम से जनता से प्राप्त सहयोग में अपेक्षित उत्साह नहीं था।

इसके अलावा यह भी महसूस किया गया कि जबकि जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए राष्ट्रीय स्तर पर संसद तथा राज्य स्तर पर विधान सभाएं हैं, जिला या ग्राम-स्तर पर ऐसी कोई संस्था नहीं है। अतः ग्राम, खंड और जिला स्तर के लिए स्थानीय स्वायत्त शासन की एक त्रिमुखी पद्धति तैयार की गई। ग्राम-स्तर की संस्था के लिए, जिसे ग्राम-पंचायत कहा गया, बालिग मताधिकार के आधार पर सीधे चुनाव की व्यवस्था की गई तथा खंड स्तर तथा जिला स्तर की संस्थाओं के लिए, जिन्हें क्रमशः पंचायत समिति तथा जिला परिषद कहा गया, चुनाव की व्यवस्था तो की गई, किन्तु सीधे चुनाव की नहीं। नियमित कानून बनाकर इन तीनों संस्थाओं को विस्तृत वित्तीय तथा प्रशासनिक अधिकार प्रदान किए गए।

अनेक राज्यों में समस्त विकास कार्यक्रमों की योजना तैयार करने और उनके कार्यान्वयन का पूरा दायित्व खंड स्तर पर पंचायत समितियों तथा जिला स्तर पर जिला परिषदों को सौंप दिया गया है। विकास विभागों में काम करने वाले सरकारी कर्मचारी भी उन्हीं के अधीन काम करते हैं। उन्हें वित्तीय मामलों में तथा अलग-अलग योजनाओं को मन्जूरी देने के सम्बन्ध में निर्णय लेने का अधिकार है। इस प्रयोग के अनेक राज्यों में अच्छे परिणाम हुए हैं। कुछेक राज्यों में दुर्भाग्यवश पारस्परिक मतभेद भी उभरे हैं। समीक्षात्मक अध्ययन से पता चलता है कि कृषि-विकास में तथा पशुधन के विकास को लोकप्रिय बनाने में पंचायती राज संस्थाओं का योगदान मूल्यवान रहा है। जहां स्वाभाविक नेतृत्व उभरा है, वहां सर्वतोमुखी प्रगति तथा

स्पष्ट उन्नति लक्ष्य की गई है। इस प्रकार इन संस्थाओं ने ग्रामीण विकास के लिए सुदृढ़ अवसंरचना की व्यवस्था की है तथा कुछ सामाजिक चेतना भी जगाई है।

किन्तु, इसके साथ ही इन स्थानीय संस्थाओं की कार्य प्रणाली के कुछ दुर्बल पक्ष भी देखने में आए हैं। सहायता अनुदान स्वीकृत करने में विशेष उत्साह नजर आता है। जहां परम्परा से चले आ रहे नेताओं ने इन संस्थाओं पर अपना प्रभुत्व कायम किया है, वहां निहित स्वार्थ ऊपर आए हैं। इससे गुटबन्दी को प्रश्रय मिला है। कहीं-कहीं पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों तथा सरकारी कर्मचारियों के बीच अच्छे संबंध नहीं हैं। कभी-कभी दायित्व की सीमारेखा स्पष्ट न होने के कारण कार्यक्रमों को लागू करने में अड़चनें आ जाती हैं। निर्वाचित प्रतिनिधियों में योग्यता और क्षमता अपेक्षित स्तर से कुछ नीचे रही है।

नई सरकार की दृष्टि में ग्रामीण विकास कार्यों के लिए नेतृत्व पंचायती राज संस्थाओं से ही आना चाहिए। अतएव उनमें पुनर्प्राणप्रतिष्ठा की प्रक्रिया आरंभ की जा चुकी है। जहां चुनावों का समय आ चुका है, वहां चुनाव करवाए जा रहे हैं। उसके तत्काल बाद निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए दायित्व, अधिकार आदि की जानकारी के लिए एक कार्यक्रम चलाया जाएगा। उन्हें व्यापक अधिकार भी दिए जाएंगे। कार्यों में अधिक स्वाधीनता दी जाएगी, जिसके फलस्वरूप आशा की जाती है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में अधिक गति आएगी तथा उसे अधिक जन-सहयोग मिलेगा।

विकास एजेंसी

सामुदायिक विकास कार्यक्रम में जो एक अन्य बड़ा दोष देखा गया, वह यह था कि उससे कमजोर वर्गों, जैसे छोटे किसान, भूमिहीन खेतिहर, कृषि मजदूर तथा कारीगरों आदि की कीमत पर सुविधा-प्राप्त ग्रामीण तथा धनी व्यक्ति लाभान्वित होते थे। इसके अतिरिक्त विस्तार एजेन्सी ग्रामीण जीवन के दिखावे वाले कार्यों में अधिक शक्ति और समय लगाती थी। स्पष्टतः उनकी चमक-दमक के कारण राजनीतिक कार्यकर्ता भी प्रभावित हो जाते थे। परिणाम यह होता था कि कृषि-उत्पादन तथा अन्य सम्बद्ध आर्थिक कार्यक्रमों की कुछ उपेक्षा हो जाती थी और उन्हें बढ़ावा नहीं मिल पाता था। इससे बचाव के लिए सन 1970-71 में छोटे और सीमांत किसानों और कृषि-मजदूरों के लिए एक विशेष कार्यक्रम बनाया गया और उस पर काम शुरू किया गया। इस समय ऐसे 160 कार्यक्रम चल रहे हैं। इनमें से प्रत्येक में प्रायः एक जिला आता है। इन कार्यक्रमों के प्रभारी अधिकारी जिला कलक्टर होते हैं। एक किसान जिसके पास ढाई एकड़ सिंचित भूमि अथवा पांच एकड़ असिंचित भूमि हो, उसे छोटे किसान की श्रेणी में रखा जाता है। जिस किसान के पास इससे कम भूमि हो वह सीमांत किसान की श्रेणी में आता है। जिस व्यक्ति की सम्पूर्ण आय का 50% से अधिक भाग खेत की मजदूरी से आता हो उसे कृषि-मजदूर माना जाता है। यह परियोजना छोटे तथा सीमांत किसानों के निर्धारण से अपना कार्य आरम्भ करती है। प्रत्येक किसान को अपना कृषि-उत्पादन कार्यक्रम तैयार करने को प्रेरित किया जाता है। छोटे किसानों के लिए उत्पादन लागत का 25% तथा सीमांत किसान के लिए उत्पादन लागत का $33\frac{1}{3}\%$ सहायता के रूप में दिया जाता है। किसी सामुदायिक कार्यक्रम में, जैसे सिंचाई के लिए नलकूप लगाने के लिए, जिससे काफी छोटे और सीमांत किसानों को लाभ पहुंचे, सहायता राशि 50% तक दी जाती है। शेष धन ऋण के रूप में व्यावसायिक बैंकों अथवा सहकारी समितियों से लिया जाता है। समय पर ऋण चुकाने का ध्यान रखते हुए किसान आर्थिक लाभ वाले कार्यक्रम बनाने का प्रयास करते हैं। ऋण देने में ऋणदायक संस्थाएं उत्पादन-कार्यक्रम के ठोस आधार तथा उसकी प्राणवत्ता पर किसान की आर्थिक सम्पन्नता से अधिक ध्यान देती हैं। यह नीति बड़ी फलदायक रही है। किसान ऋण चुकाने में नियमित हुए हैं। किन्तु जहां कहीं दैवी प्रकोप आदि के कारण, समय पर ऋण चुकाना संभव नहीं होता, वहां ऋण स्थिरीकरण कोष किसानों का सहायक बनता है। इस कोष से ऋण देने वाली संस्था का ऋण चुका दिया जाता है। इससे एक ओर तो ऋणदायक संस्था सामान्य रूप से अपना काम चलाने में समर्थ बनी रहती है और दूसरी ओर किसानों को भी ऋण चुकाने के लिए कुछ अतिरिक्त समय मिल जाता है।

कृषि मजदूर अथवा खेतिहर मजदूर के लिए पशु-पालन, मुर्गीपालन, सूअर पालन, मधुमक्खी पालन तथा भेड़-बकरी पालन आदि के कार्यक्रम तैयार किए गए हैं। एजेन्सी इस सम्बन्ध में उनकी योजना तैयार करने में, ऋण दिलाने में, सरकारी अथवा अन्य माध्यमों से उन्हें पशुधन उपलब्ध कराने में उनकी सक्रिय सहायता करती है। इन पूरक कार्यक्रमों के द्वारा खेतिहर मजदूरों तथा छोटे और सीमांत किसानों ने अपनी आय में काफी वृद्धि की है। कार्यक्रम के अधीन नियुक्त कर्मचारी इस कार्यक्रम के मुख्य कार्यवाहक हैं। तो भी इसे अपेक्षित शक्ति देने के लिए प्रत्येक स्तर पर अतिरिक्त कर्मचारियों की व्यवस्था है। परियोजना अधिकारी सामान्यतः उप-निदेशक के समान-पद का एक वरिष्ठ अधिकारी होता है। परियोजना का सामान्य काल पांच वर्षों का होता है। इसका बजट डेढ़ करोड़ रु० का होता है तथा इससे लाभ पाने वालों की संख्या प्रायः 50,000 होती है। ये परियोजनाएं बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं। हर तरफ से इसे अन्य क्षेत्रों में भी लागू करने का जबर्दस्त दबाव पड़ रहा है। अनुभवों से ज्ञात होता है कि 50,000 लोगों को इसके कार्यकारी प्रभाव में लाने के लिए पांच वर्ष की अवधि बहुत ही अपर्याप्त है। अनेक परियोजनाओं में तो इसकी अवधि 7 या कहीं-कहीं 10 वर्ष तक बढ़ा दी गई है।

सूखा क्षेत्र कार्यक्रम

देश के काफी बड़े क्षेत्र में वर्षा के दर्शन नहीं होते। फिर कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां नाममात्र को वर्षा होती है। इन क्षेत्रों में बराबर सूखा पड़ता रहता है और यहां की आर्थिक स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहती है। इन क्षेत्रों को सूखे की निरन्तर स्थिति से उबारने तथा समय-समय पर पड़ने वाले अकाल के चक्र से निकालने के लिए एक विशेष कार्यक्रम तैयार किया गया है। इसमें पूर्णत: अथवा अंशत: 74 जिले आते हैं। यहां सभी मानव, पशु तथा भौतिक-स्रोतों के अधिकतम उपयोग का तरीका अपनाया गया है। सूखी खेती तथा नमी का नियंत्रण प्रमुख तकनीक हैं, जिनके द्वारा कृषि पैदावार के स्तर में उन्नति तथा अधिकतम उत्पादन की संभावना है। छोटे तथा सीमांत किसानों और भूमिहीन मजदूरों की आय के पूरक रूप में पशुधन के विकास का काम हाथ में लिया गया है। इस कार्यक्रम के अन्य महत्वपूर्ण आधार हैं सिंचाई का विकास तथा वनरोपण।

इस कार्यक्रम में भी कर्मचारियों की तथा वित्त की व्यवस्था लघु किसान विकास एजेन्सी और सीमांत किसान तथा कृषि मजदूर संस्थाओं के समान ही है। इस कार्यक्रम की उपलब्धियां संतोषप्रद रही हैं। इस कार्यक्रम ने विश्व बैंक ग्रुप का ध्यान भी आकर्षित किया है जिसने इसे बड़े पैमाने पर वित्तीय सहायता देना आरंभ कर दिया है।

जनजातीय विकास

भारत की जनसंख्या में जनजातियों का भी बड़ा भाग है। अलग-अलग रहना पसन्द करने के कारण ये राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से कटे रहे हैं। अत: उनकी आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए जानबूझ कर अधिक सशक्त प्रयास किए गए हैं। जनजातियों के विकास तथा कल्याण के लिए अधिक व्यवस्था की गई है। वर्तमान प्रशासनिक तंत्र को जनजातियों के विकास कार्यक्रमों को अधिक सहायता देने के लिए मजबूत बनाया गया है। खास तौर से ग्रामीण विकास के लिए आठ विशेष परियोजनाएं आरम्भ की गई हैं। उनका उद्देश्य अधिकतम कृषि उत्पादन तथा सम्बद्ध कार्यक्रमों को लोकप्रिय बनाना है। इसमें बागवानी, भूमि-विकास, लघु सिंचाई, पशुपालन, स्थान बदल-बदल कर खेती करने पर नियंत्रण, सहकारी संस्थाओं को शक्तिशाली बनाना, ऋण-मुक्ति इत्यादि शामिल हैं। यह ध्यान रखा गया है कि इस प्रक्रिया में परम्परागत जनजातीय संस्कृति को आघात न पहुंचे, बल्कि उसे पूरी तरह विकसित होने का और सुरक्षित रहने का मौका मिले। पांचवीं पंचवर्षीय योजना में इन परियोजनाओं का संपूर्ण व्यय बारह करोड़ रु० रखा गया है।

पहाड़ी क्षेत्र

पहाड़ी क्षेत्रों की विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तीन जिलों में कृषि तथा सहायक गतिविधियों के समन्वित विकास की कुछ अग्रगामी परियोजनाएं आरम्भ की गई हैं। इन परियोजनाओं के लिए चालू योजना में 2 करोड़ 70 लाख रुपयों का प्रावधान है। एक परियोजना का सामान्य कार्यकाल पांच वर्ष का है। इन परियोजनाओं में भी कर्मचारियों तथा वित्त-व्यवस्था का स्वरूप छोटे किसानों की विकास एजेंसी जैसा ही है।

इन क्षेत्रों के विकास के मार्ग की मुख्य बाधाएं हैं छोटी जोतें तथा संचार साधनों का अभाव। स्वाभाविक रूप से अभी तक यहां होने वाली प्रगति धीमी रही है किन्तु अब इसमें गति आ रही है।

समन्वित विकास

विभिन्न प्रकार की परियोजनाओं से प्राप्त अनुभवों ने रोजगार की संभावनाएं बढ़ाने के लिए एक अधिक गतिशील नीति की आवश्यकता की ओर संकेत किया है। अत: यह निश्चय किया गया है कि विज्ञान तथा टेक्नालाजी के सोद्देश्य प्रयोग के माध्यम से विशेषत: ग्रामीण गरीबों के लाभ के लिए स्थानीय साधनों का अधिक से अधिक उपयोग किया जाए। ग्रामीण गरीबों के लिए लाभकारी रोजगार की व्यवस्था करने के उद्देश्य से, ताकि उनकी क्रय-शक्ति बढ़े, बीस जिलों को एक व्यापक कार्यक्रम तैयार करने के लिए चुना गया है। विस्तृत सर्वेक्षण के पश्चात साधनों की तालिका तैयार की जाएगी और उसके आधार पर कार्यों की योजना तैयार की जाएगी।

एक जिले के लिए कार्यकारी योजना तैयार भी की जा चुकी है। अन्य सात जिलों के सम्बन्ध में साधनों की तालिकाएं तैयार होने के क्रम में हैं। चालू वर्ष में इस कार्यक्रम के लिए आठ करोड़ रु० की राशि की व्यवस्था की गई है।

राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिश पर इस कार्यक्रम के लिए चार गांवों का झुंड चुना गया है। इस कार्यक्रम के मुख्य घटक हैं—

जोतों की चकबन्दी, सूखे क्षेत्रों में अधिकतम जल-नियंत्रण तथा नमी के संरक्षण द्वारा भूमि का सर्वतोमुखी विकास, सिंचाई की अधिकतम व्यवस्था और उपयुक्त फसलें उगाने का कार्यक्रम।

इस कार्यक्रम के लिए पांचवीं योजना में 1 करोड़ 98 लाख रु० की राशि रखी गई। इसमें से चालू वर्ष में व्यय की जाने वाली रकम 50 लाख रु० है।

विकास सम्बन्धी सभी प्रयासों में एक मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय भी रहा है। न्यूनतम आवश्यकता के राष्ट्रीय कार्यक्रम का उद्देश्य सारे देश में प्राथमिक सेवाओं का जाल-सा बुन देना है। लक्ष्य है जीवन स्तर में एक मूलभूत न्यूनतम एकरूपता तथा समानता की उपलब्धि।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के उद्देश्य इस प्रकार हैं—

1. 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए, उनके घरों से निकटतम स्थान में, प्रारम्भिक शिक्षा की सुविधाएं प्रदान

करना।

2. सभी क्षेत्रों में न्यूनतम तथा एक-रूप जन स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था, जिनमें निरोधक दवाएं, परिवार कल्याण, पोषण आदि सम्मिलित हैं।

3. जल के निरन्तर अभाव वाले अथवा अस्वास्थ्यकर जल-स्रोतों वाले गांवों में पानी की सप्लाई।

4. डेढ़ हजार अथवा इससे अधिक की आबादी वाले सभी गांवों में पक्की सड़कें। यह न्यूनतम सीमा पहाड़ी जन-जातियों के ग्राम-समूहों तथा तटीय क्षेत्रों को ध्यान रखते हुए निर्धारित की गई।

5. ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन मजदूरों के लिए घर बनाने के लिए भूमि की व्यवस्था।

6. गन्दी बस्तियों के वातावरण में सुधार।

7. बिजलीकरण का प्रसार ताकि वह ग्रामीण आबादी के प्रायः 30-40% को उपलब्ध हो सके।

इस कार्यक्रम के लिए पांचवीं योजना में 2803 करोड़ रुपए की व्यवस्था है। राज्य सरकारों से परामर्श के पश्चात राज्यवार व्यय का निर्णय किया जा चुका है। राज्यों के अंदर जो वास्तविक बंटवारा होगा उसमें अपेक्षाकृत पिछड़े इलाकों को तरजीह दी जाएगी।

नई सरकार ने इस कार्यक्रम में विशेष रुचि दिखाई है तथा चालू वर्ष में ग्रामीण जल आपूर्ति के लिए अतिरिक्त 40 करोड़ रुपयों का तथा ग्रामीण संपर्क मार्गों के लिए अतिरिक्त 20 करोड़ रुपयों का प्रावधान किया है। ग्रामीण अवसंरचना को मजबूत बनाने पर और अधिक बल दिया गया है। इस प्रकार अब ग्रामीण क्षेत्र अधिक प्रकाश में आ गया है।

ग्रामीण रोजगार

इस समय बेरोजगारी हमारे लिए सबसे बड़ी चुनौती है। कृषि में लगे हुए लोगों में भी सभी को पूरा काम नहीं है। अतः पशुपालन, मुर्गीपालन, सूअर पालन, मछली पालन, रेशम के कीड़े पालना, भेड़-बकरी पालना, मधु-मक्खी पालन आदि कार्यक्रमों के माध्यम से पूरक व्यवसाय दिए जा रहे हैं। किन्तु इन सभी को मिलाकर भी देखें तो अभी समस्या का स्पर्श भर हो पाया है। समस्या का हल भारी पैमाने पर ग्राम उद्योगीकरण से ही संभव प्रतीत होता है।

अनुवादक—भालचन्द्र ओझा

[सूखे के खिलाफ लड़ाई......पृष्ठ 22 का शेषांश]

कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के सूखा प्रवृत्त क्षेत्रों में वर्षा वाले क्षेत्रों में रेशम के कीड़े पालने का कार्य सफलतापूर्वक शुरू किया गया है।

भावी कार्यक्रम

अब वह स्थिति आ रही है जब कि विकास के दूसरे चरण की समस्याओं की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होगी। अधिकांश क्षेत्रों में बुनियादी कार्य की व्यवस्था हो चुकी है और उत्पादन में वृद्धि के लिए प्रशोधन और हाट-व्यवस्था का प्रबन्ध करना होगा। इस कार्यक्रम में ग्रामीण और कुटीर उद्योगों को सम्मिलित करने का प्रश्न विचाराधीन है। अब तक इस कार्यक्रम के अधीन जो निश्चित परिणाम प्राप्त हुए हैं, वे काफी उत्साहवर्धक हैं। भविष्य में इन पर अधिक राशि लगानी पड़ेगी ताकि देश के इन अधिकांश पिछड़े हुए क्षेत्रों की विकास सम्बन्धी सभी जरूरतें पूरी की जा सकें। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि इस कार्यक्रम ने देश के सूखा प्रवृत्त क्षेत्रों को आशा की किरण दिखाई है।

अनुवादक—कृष्ण कुमार

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र, फोटो आदि भेजिए। भाषा सरल हो और रचना का आकार 'कुरुक्षेत्र' के दो ढाई पृष्ठ से अधिक न हो।

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनाने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत बिजनेस मैनेजर, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक 'कुरुक्षेत्र' (हिन्दी), कृषि मन्त्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

नई औद्योगिक नीति में गांव और लघु उद्योग

—आई० सी० पुरी—

[ग्रामीण बेरोजगारी एक गंभीर समस्या है। कृषि के क्षेत्र में ही सभी को रोजगार नहीं मिल सकता। इसीलिए ग्रामीण जनता नौकरी की तलाश में शहरों की ओर जाती है। परन्तु उसे निराशा ही मिलती है। इस समस्या का हल लघु और कुटीर उद्योगों के विकास और उनका पूरा-पूरा उपयोग करने में है। प्रस्तुत लेख में इसी पहलू पर प्रकाश डाला गया है।]

हमारे देश की अर्थव्यवस्था के औद्योगिक ढांचे में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग, निजी क्षेत्र के बड़े कारखाने और गांवों के अव्यवस्थित उद्योग, कुटीर और लघु क्षेत्र के उद्योग सम्मिलित हैं। पिछले 30 वर्षों में देश ने औद्योगिक उत्पादन में कुछ हद तक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है, फिर भी 70% जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। उद्योग अधिकतर बड़े शहरों में स्थापित हो रहे हैं। अधिकतर लोग इन उद्योगों में नौकरी के लिए शहरों में आ रहे हैं। पिछले 30 वर्षों में बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि हुई है और गैर-कृषि क्षेत्रों में रोजगार के कम अवसर पैदा हुए हैं। फलस्वरूप बेरोजगारों को रोजगार देने के लिए गांवों में कुटीर और लघु उद्योगों का विकास जरूरी है।

नई औद्योगिक नीति के मुख्य लक्ष्य हैं—उपभोक्ता वस्तुओं का अधिकतम उत्पादन, मानव और भौतिक साधनों का अधिकतम उपयोग, आर्थिक सत्ता के एकाधिकार पर रोकथाम, रोजगार के अधिक अवसर देने वाले उद्योगों का तेज विस्तार और उद्योगों को सामाजिक जरूरतों के अनुरूप ढालना।

स्पष्ट है कि लघु और ग्रामीण उद्योगों को इस औद्योगिक नीति के उद्देश्य प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। ये उद्योग अधिक उपभोक्ता वस्तुएं पैदा कर सकते हैं तथा गांवों और छोटे शहरों में अधिक रोजगार के अवसर पैदा कर सकते हैं। इस समय करीब डेढ़ करोड़ ग्रामीण कारीगर, 35 लाख हथकरघे और अनेक कृषि आधारित उद्योग ग्रामीण साधनों का उपयोग कर रहे हैं।

कुटीर, ग्रामीण और लघु क्षेत्र के उद्योगों से क्षेत्रीय विकास में सहायता मिलती है। इनसे उत्पादन के साधनों और राष्ट्रीय आय का उचित बंटवारा होता है। ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था में सामंजस्य स्थापित होता है। ग्रामीण और लघु उद्योगों में एक व्यक्ति को रोजगार देने के लिए 1000 से 6000 रु० तक राशि की जरूरत पड़ती है, जबकि इसकी तुलना में बड़े क्षेत्रों के उद्योगों में एक व्यक्ति के लिए रोजगार पैदा करने के लिए चालीस हजार से एक लाख रुपए की आवश्यकता होती है। इसलिए 10 वर्षों में 7 से 8 करोड़ व्यक्तियों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए बड़े उद्योग बेरोजगारी की समस्या हल नहीं कर सकते, क्योंकि इसके लिए इनमें बहुत अधिक धन लगाना होगा।

गांवों पर अधिक बल

पिछले तीस वर्षों में गांवों में औद्योगिक इकाइयां स्थापित नहीं की गई जिसके कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में असंतुलन पैदा हो गया है। गांवों में लोग केवल कृषि पर निर्भर रहते हैं। नई औद्योगिक नीति का उद्देश्य इस स्थिति को बदलना है।

"मानव और भौतिक संसाधनों के अधिकतम उपयोग" वाली इस नीति के क्रियान्वयन के लिए यह जरूरी है कि अर्द्ध-कुशल और अकुशल श्रमिकों को निपुण बनाया जाए। नए कर्मचारियों को कारखानों में प्रशिक्षण दिया जाए। कृषि श्रमिकों और ग्रामीण श्रमिकों को गैर-कृषि कार्यों के लिए प्रशिक्षण दिया जाए। जब वे उत्पादन शुरू करते हैं या उत्पादन बढ़ाते हैं, तब उन्हें धन, कच्चे सामान और हाट सुविधाएं प्रदान की जाएं।

लघु उद्योगों को सहायता

नई नीति का एक प्रमुख उद्देश्य यह है कि बड़े उद्योग छोटे उद्योग क्षेत्र में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रवेश न करें। छोटी इकाइयों को रियायतें और प्रोत्साहन मिले। आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को दूर करने की एक दिशा और भी है। ऐसी वस्तुओं के लिए, जिनका उत्पादन और विकास लघु क्षेत्र के लिए सुरक्षित कर दिया गया है, उन्हें बड़े उद्योगों में बनाने की मनोवृत्ति को बदला जाए।

यह भी पाया गया है कि सब्जियों और फलों की डिब्बाबंदी, चमड़ा कमाने, कपड़े सिलने, दियासलाई, आतिशबाजी, अगरबत्ती आदि उद्योगों में रोजगार के

छात्रों ने बाढ़ का पानी निकाला

राजस्थान में सांभर लेक के राजकीय महाविद्यालय के 90 छात्रों ने गत सप्ताह 'सुख सागर' के पास भरे हुए बाढ़ के पानी को एक लम्बी खाई बनाकर दो हजार मीटर की दूरी पर स्थित झील में गिराने का कार्य किया।

ये छात्र कालेज में कार्यरत राष्ट्रीय सेवा परियोजना के सदस्य हैं। इससे ढाई हजार वर्ग के क्षेत्र को बाढ़ के पानी से बचाया जाना संभव हो सका है।

किसानों की पहली पसंद

आधुनिक कृषि तकनीक अमल में लाकर और कृषि उत्पादन बढ़ाकर टाफे (टी ए एफ ई) कई सालों से भारतीय किसानों के साथ-साथ चल रहे हैं. यही वजह है कि आज एम एफ १०३५ और टाफे ५०४ ट्रैक्टर किसानों द्वारा सबसे अधिक पसंद किए जाते हैं। जानते हैं क्यों ?

क्योंकि ये ट्रैक्टर, नई-नई मशीनों से सुसज्जित बहुत ही आधुनिक संयन्त्र में बनाये गए हैं. ये ट्रैक्टर उच्च श्रेणी के हों, इसके लिए उत्पादन की हर अवस्था में बहुत ही सावधानी बरती जाती है

क्योंकि टाफे के प्रमुख उपकरणों की विस्तृत श्रेणी विभिन्न किस्म की मिट्टी, जलवायु और फसल के लिए उपयुक्त है फलस्वरूप ट्रैक्टर का पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया जा सकता है.

क्योंकि ये ट्रैक्टर, चाहे जहां भी इस्तेमाल किए जायें, निश्चय ही हमारे २०० सर्विस-केन्द्रों के नज़दीक ही होंगे; जिनमें हमारे प्रमुख विक्रेता और देश भर में फैली उनकी शाखाएं भी शामिल हैं.

एम एफ १०३५ और टाफे ५०४ ट्रैक्टर खाद्य-उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करने की दिशा में किये जा रहे देश के प्रयासों में हाथ बंटा रहे हैं. टाफे को इस बात का गर्व है कि वे किसानों को अति आधुनिक कार्यक्षम मशीनें देकर कृषि-उत्पादन बढ़ाने, तरक्की करने और समृद्धिशाली बनाने में मदद कर रहे हैं.

TAFE

ट्रैक्टर्स एण्ड फार्म इक्विपमेन्ट् लिमिटेड
मद्रास

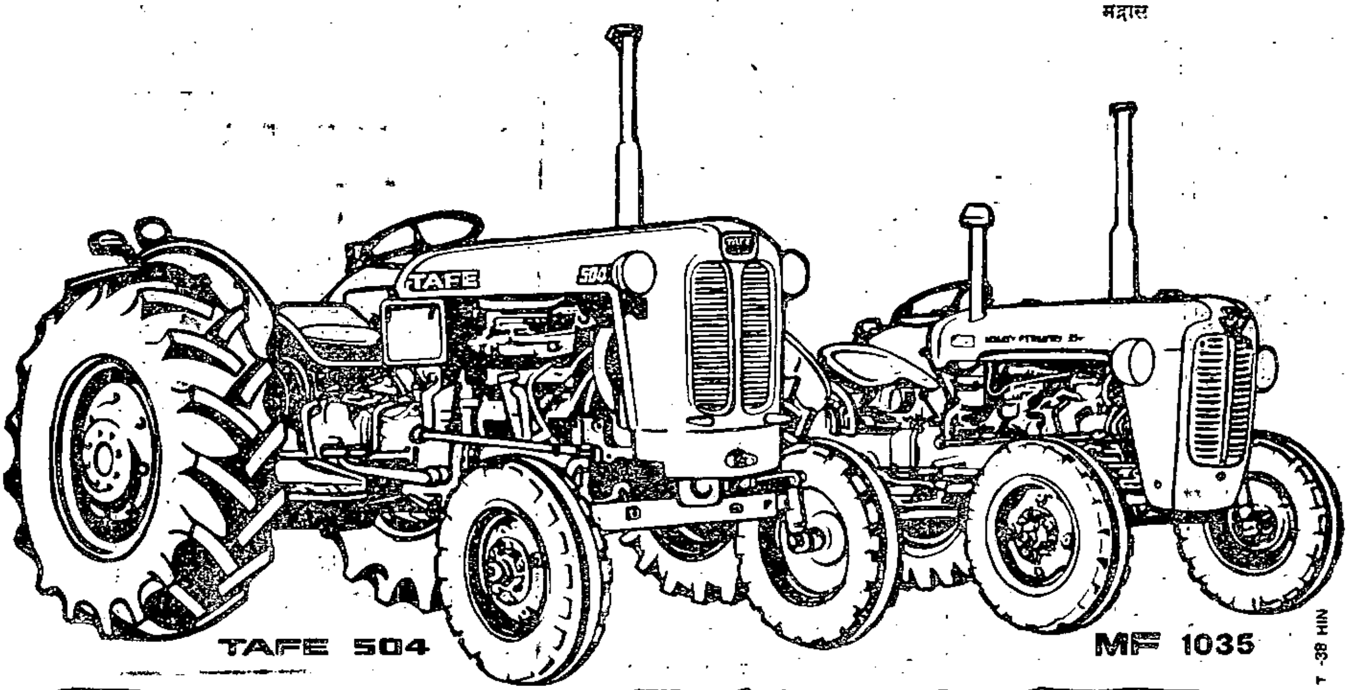

T-38 HIN

लघु और कुटीर उद्योग गांवों में खुशहाली का दौर ला सकते हैं

अधिक अवसर पैदा होते हैं। इसलिए जरूरी है कि इनके लिए स्वदेशी और विदेशी बाजारों का भी पता लगाया जाए, ताकि इनमें रोजगार का पूरा लाभ मिल सके।

तकनीकी सहायता

उद्योगों को सामाजिक जरूरतों के अनुसार ढालने के लिए लघु उद्योग विकास संस्थान के विस्तार अधिकारी इन उद्योगों को तकनीकी जानकारी और सहायता देंगे, जिससे लागत कम की जा सके और कीमतों पर नजर रखी जा सके। लघु उद्योग भी सामाजिक जरूरतें तभी पूरी कर सकते हैं जब वे कृषि, शिक्षा संस्थाओं, जन स्वास्थ्य संगठनों और निर्माण आदि के लिए उनकी जरूरतों के अनुसार वस्तुएं और सेवाएं समुचित मात्रा में उपलब्ध करें तथा उनकी कीमत भी कम हो।

सरकार कृषि, ग्रामीण और लघु उद्योगों के विकास के लिए वचनबद्ध है, जिससे गरीबी और बेरोजगारी को समाप्त किया जा सके। ग्रामीण क्षेत्रों में, रोजगार और बेरोजगारी का उत्पादकता और आय के संदर्भ में पता लगाया जाएगा। समन्वित ग्रामीण विकास, छोटे किसान और खेत मजदूर परियोजना, ग्रामीण उद्योग परियोजना, ग्रामीण काश्तकार परियोजना और सिल्क, नारियल के रेशे, हस्तशिल्प, मुर्गीपालन, डेरी उद्योग के विकास-विस्तार और विभिन्न विकास कार्यों में तालमेल स्थापित करने के अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे। श्रमिकों की उत्पादन शक्ति को बढ़ाना, जनता की क्रय शक्ति को बढ़ाना और अतिरिक्त रोजगार के अवसर पैदा करना, ये सभी गरीबी हटाने के कार्यक्रम से सम्बन्धित हैं।

प्रधानमंत्री ने घोषणा की है कि योजना आयोग बेरोजगारों को रोजगार देने की योजना इस वर्ष के अंत तक तैयार कर लेगा। जब यह योजना तैयार हो जाएगी तो ग्रामीण और लघु उद्योगों का बेरोजगारी दूर करने में क्या योगदान होगा इसकी सही तस्वीर सामने आ सकेगी। ●

सुथार कारीगर अपने फन से काठ में जीवन फूंकते हुए

रेगिस्तान का काष्ठकला उद्योग

भूरचन्द जैन

भारतीय हस्तकला उद्योग में राजस्थान प्रदेश का सर्वोत्तम स्थान है। इसी प्रदेश के पाकिस्तान सीमा से सटे रेगिस्तानी क्षेत्र हस्तकला के लिए अपना विशिष्ट स्थान लिए हुए हैं। रेगिस्तान के आंचल में शिल्प सौन्दर्य के अनेकों प्राचीन, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं दर्शनीय स्थान आगन्तुकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, वहां दूसरी ओर इस क्षेत्र में हस्तकला उद्योग से निर्मित सामग्री को प्राप्त करने के लिए वे सदैव लालायित रहते हैं। रेगिस्तानी ऊनी गलीचे, ऊन से बने पट्टू, कम्बल, शाल, बरड़ी जन-जन में लोकप्रिय बन चुके हैं। नक्काशी और भरत का कार्य और कपड़े पर रेशमी डोरों की कढ़ाई तथा कांच की टीकों की जड़ाई आज देश के कोने-कोने में ख्याति प्राप्त कर रही है। विदेशी पर्यटक इन्हें चाव से खरीद कर पहनते हैं। रेगिस्तानी बाड़मेर जिले के रंगाई-छपाई के वस्त्र तो आज विदेशी मुद्रा अर्जित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। रेगिस्तान के इन क्षेत्रों में लकड़ी पर खुदाई का कार्य आज जन-जन में अधिक लोकप्रिय बन रहा है। कुशल, प्रतिभाशाली और श्रमजीवी सुथार जाति के लोग आज लकड़ी अर्थात काष्ठकला में अपनी कार्यकुशलता, बारीक खुदाई, नाना प्रकार की आकृतियां उभार कर इसे जगत प्रसिद्ध करने में लगे हुए हैं।

काष्ठकला में अधिकतर रेगिस्तानी सीमान्त क्षेत्र में निवास करने वाले सुथार जाति के लोग कार्यरत हैं। इनकी संख्या पश्चिमी राजस्थान के बाड़मेर एवं जैसलमेर जिलों में लगभग पन्द्रह हजार के आसपास होगी, जो इस हस्तकला को जीवित रखने में आज भी सक्रिय हैं। ये लोग आर्थिक स्थिति से कमजोर हैं। इनमें अधिकतर लोग वर्षा में खेती और पशुपालन करते हैं। खेती और पशुपालन व्यवसाय के अलावा फालतू समय में ये लोग आम इस्तेमाल का लकड़ी का सामान तैयार कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

लकड़ी का आधुनिक फर्नीचर, घरेलू उपयोग में आने वाला लकड़ी का सामान सुथार जाति के हर क्षेत्र के लोग तैयार करने में दक्ष होते हैं। जैसे पत्थर पर छेनी और हथौड़ी की मार से शिल्पकार अत्यन्त ही सुन्दर और बारीक शिल्पकला फूंक देते हैं, उसी प्रकार आजकल साधारण जन जीवन व्यतीत करने वाले रेगिस्तानी क्षेत्र के सुथार लोग लकड़ी पर सुन्दर, कलात्मक, आकर्षक एवं बारीक खुदाई का कार्य कर काष्ठकला में नया जीवन उभार देते हैं।

गांव में हों या शहर में, ये लोग, बिना किसी मशीन के अपने वही हजारों वर्ष पुराने औज़ारों से लकड़ी पर खुदाई का कार्य करने में जुटे रहते हैं। हथौड़ा, सोरसी, रंधा, आरी, बसूला, बरमा, नईया, नकलो, तिलो, अरगती, करौती आदि से ये अपना कार्य चला लेते हैं। आजकज इन लोगों ने टेबल, कुर्सी, सोफासेट, पलंग, ड्रेसिंग टेबल, साइड टेबल, पेनल, दरवाज़ों के बारासक, छत की सजावट, चारपाई के पाये, बालकों

के झूले, भोजन करने के बाजोठ आदि नाना प्रकार के लकड़ी के सामान पर बारीक खुदाई कर उसे अधिक आकर्षित बनाने में दक्षता प्राप्त कर ली है। रेगिस्तान में निर्मित इस प्रकार की काष्ठकला के कलात्मक फर्नीचर को देश के कोने-कोने में पसन्द किया जाने लगा है। देश के विख्यात शहरों के पर्यटक केन्द्रों में, विश्राम गृहों, अतिथि आवास स्थलों, लोकप्रिय होटलों में रेगिस्तान में इस प्रकार लकड़ी पर खुदाई से तैयार किए गए फर्नीचर को सजाने के उपयोग में लिया जाने लगा है। इसी कारण रेगिस्तान के गुदड़ी के लाल सुथारों की हस्तकला अधिक लोकप्रिय बनती जा रही है।

इस प्रकार की काष्ठकला से तैयार लकड़ी की नाना प्रकार की सामग्री को स्वतन्त्रता से पूर्व फ्रान्स, इटली आदि देशों के लोग पसन्द किया करते थे, लेकिन आजकल देश में भी इन्हें पसन्द किया जाने लगा है। सुथार जाति के कुशल कारीगर प्रतिवर्ष लगभग दस-पन्द्रह लाख रुपये का काष्ठकला का सामान तैयार कर बेच लेते हैं। एक कुशल कारीगर को प्रतिदिन इस कार्य से दस-बारह रुपए मिल जाते हैं और उसका सहयोगी कारीगर दिन में आठ रुपए तक कमा लेता है। लकड़ी पर सुन्दर एवं कलात्मक खुदाई करके बेलबूटे, पशु-पक्षियों की आकृतियों, भवनों की बनावट, छज्जों एवं कंगूरों की कला, जालियों की सुन्दरता, गुम्बजों की छटा खिलाने में इन कलाकारों का परिश्रम उभर आता है। लकड़ी की कीमत एवं कारीगरों की मेहनत को देखते हुए भी यह सामग्री अत्यंत सस्ती मिलती है।

रेगिस्तान के बाड़मेर जिले में लकड़ी पर इस प्रकार की बारीक खुदाई का कार्य अधिक होता है। यहां से तैयार माल दिल्ली, बम्बई, अहमदाबाद, बंगलौर, कलकत्ता, जयपुर आदि नगरों में बहुमात्रा में जाने लगा है। सुथार लोग इस कला को अब अधिक आकर्षक एवं कलात्मक बनाने में जुटे हुए हैं। ये लोग अपनी सिद्धहस्त कलाकृतियों के निर्माण के कारण रेगिस्तान के आंचल से उठकर भारत के विख्यात नगरों में कार्य करने में रत हो गए हैं। बम्बई, अहमदाबाद, दिल्ली, जयपुर, कलकत्ता आदि प्रमुख नगरों में अपनी हस्तकला को विख्यात करने में ये लोग जुटे हुए हैं।

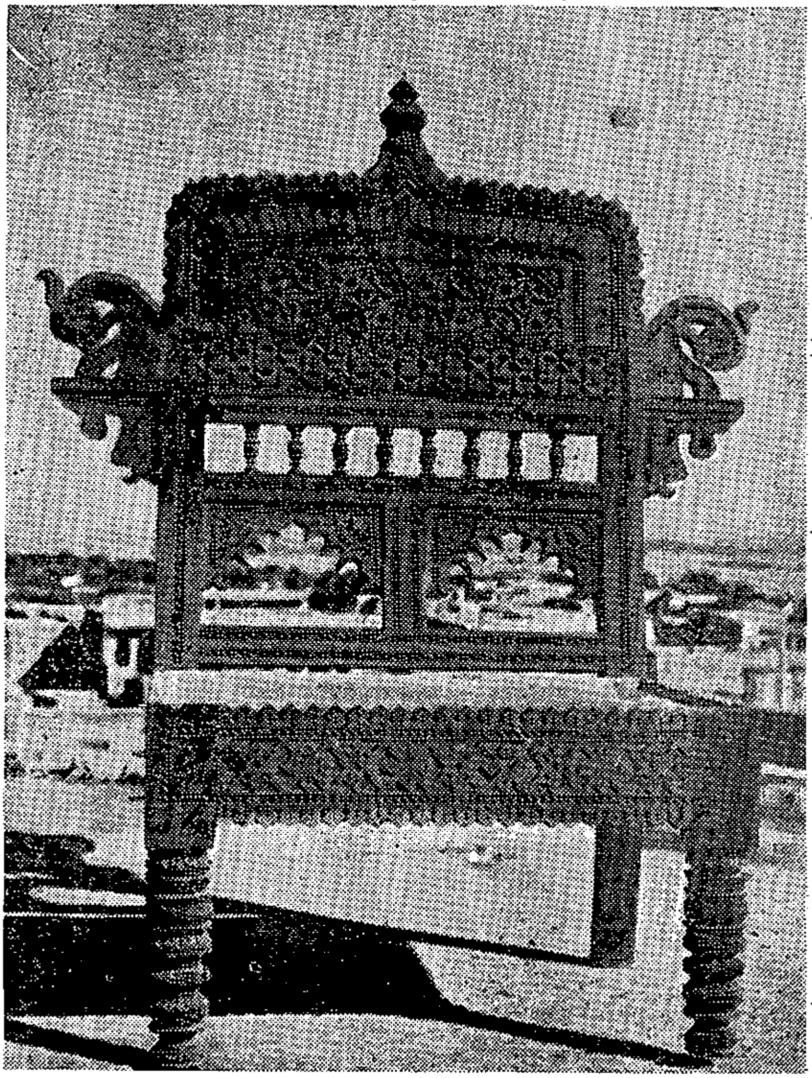

कला का कमाल—मामूली काठ राजसिंहासन बन गया है

सुथार लोग बारीक काष्ठकला सागवान और शीशम की लकड़ी पर करते हैं, जो रेगिस्तानी क्षेत्र में उत्पन्न होती है। रेगिस्तान में उत्पन्न होने वाली रोहिड़ा लकड़ी पर इन्होंने इस लघु उद्योग को सबसे अधिक विकसित किया है। खुदाई के लिए यह रोहिड़ा लकड़ी अधिक उपयुक्त रहती है। रोहिड़ा लकड़ी के चारपाई के पाये, फर्नीचर, पलंग सस्ते भी बनते हैं और अधिक टिकाऊ भी रहते हैं। आजकल रोहिड़ा लकड़ी से बनी सामग्री की मांग दिनों दिन बढ़ने लगी है।

रेगिस्तान के इस लघु उद्योग को यदि आर्थिक सहयोग और प्रोत्साहन के साथ-साथ तकनीकी जानकारी दी जाए तो इस उद्योग से निर्मित सामग्री विदेशों में और अधिक लोकप्रिय बन सकती है।

जूनी चौकी का वास
बाड़मेर, राजस्थान

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम

समन्वित ग्राम विकास के नए कार्यक्रम में पहले प्राप्त अनुभवों को ध्यान में रखा गया है जो यह प्रदर्शित करते हैं कि ग्रामीण इलाकों में गरीबी, बेरोजगारी तथा अल्प रोजगार की समस्या को अकेले तदर्थ तथा अलग-अलग क्षेत्रीय कार्यक्रमों के माध्यम से हल किया जाना सम्भव नहीं है। इसके अलावा, इसमें गरीब ग्रामीणों के लाभ के लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के उद्देश्यपूर्ण निवेशों के माध्यम से उपलब्ध स्थानीय संसाधनों का अधिक से अधिक उपयोग करने पर जोर दिया गया है।

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के लिए अपनाई गई नीति के उद्देश्य हैं भौतिक साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करके रोजगार के अवसर पैदा करना, ग्रामीण इलाकों में कृषि पर आधारित ग्राम तथा लघु उद्योग स्थापित करना, कृषि, पशुपालन तथा डेरी, कुक्कुटपालन तथा सूअर पालन गतिविधियों को तेज करना और स्व-रोजगार की योजनाओं को बढ़ावा देना।

समन्वित ग्राम विकास परियोजनाओं को आरम्भ करने के लिए राज्यों में जिलों का चयन करने के लिए ग्राम विकास विभाग, कृषि अनुसन्धान तथा शिक्षा निदेशालय, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी निदेशालय, योजना आयोग और विज्ञान तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद के प्रतिनिधियों का एक कार्यकारी दल गठित किया गया था। कार्यकारी दल ने कार्यक्रम के लिए चुने जाने वाले जिलों का चयन करने के लिए निम्नलिखित मानदंड सुझाए :—

(क) आर्थिक रूप से पिछड़े जिले जिनमें काफी विकास की संभाव्यता है ;

(ख) वे जिले जिनमें ग्रामीण बेरोजगारी तथा अल्प रोजगार की विकट समस्याएं हैं;

(ग) वे जिले जिनमें पहले से ही कुछेक आधारभूत विकास ढांचे मौजूद हैं और

(घ) वे जिले जिनमें विज्ञान तथा तकनीकी संस्थान पहले से ही कार्य कर रहे हैं अथवा जिन्हें आसानी से कार्यक्रम में शामिल करना सम्भव हो सकता है।

उपर्युक्त कार्य के पूरा होने पर कार्यक्रम के लिए 20 जिले चुने गए।

कार्यक्रम को कार्यान्वित करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व कृषि और सिंचाई मंत्रालय के ग्राम विकास विभाग को सौंपा गया है, जिसे इस कार्यक्रम के लिए नाडल विभाग का नाम दिया गया है। चुने जिलों के लिए साधन सूचियां तथा कार्यवाही योजनाएं तैयार करने का उत्तरदायित्व भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद को सौंपा गया है।

अब तक केवल महाराष्ट्र के चन्द्रपुर जिले के बारे में कार्यवाही योजना उपलब्ध हुई है और योजनाओं की पहली पारी मंजूरी के अधीन है। चन्द्रपुर में कार्यक्रम शीघ्र ही चालू हो जाएगा। शेष 19 जिलों के लिए संसाधन सूचियां तथा कार्यवाही योजनाएं भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद द्वारा तैयार की जा रही हैं।

पूर्ण ग्राम विकास कार्यक्रम

राष्ट्रीय कृषि आयोग ने इस बात को महसूस किया कि ग्रामीण इलाकों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने और विकास के लाभों का समान वितरण करके लोगों के कल्याण तथा खुशहाली को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। इसलिए उसने "पूर्ण ग्राम विकास कार्यक्रम" की सिफारिश की जो पांचवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में कार्यान्वित किया जाना है। कार्यक्रम में ये शामिल हैं : (1) चकबंदी; (2) मरु इलाकों में जल नियंत्रण तथा नमी संरक्षण को अधिकतम बढ़ाने के लिए समस्त भूमि का विकास करने की योजना; (3) सिंचाई सहायता को अधिकतम मात्रा तक बढ़ाना (4) सिंचाई का उत्तम उपयोग तथा सिंचाई और जल निकास का उत्तम नियन्त्रण सुनिश्चित करने हेतु गांव के लिए शस्योत्पादन कार्यक्रम।

इसकी मुख्य बात यह है कि देहात में आय की असमानताओं को कम करके और रोजगार के अवसरों को बढ़ाकर सामाजिक उद्देश्य को प्राप्त किया जाए। इस कार्यक्रम में कृषि क्षेत्र को संतृप्त करने के अलावा गैर कृषि क्षेत्रों पर बल दिया जाता है, ताकि गांव में सभी वर्गों को लाभ पहुंच सके। इरादा यह है कि जब एक बार फालतू उत्पादन होने लगेगा और सम्पूर्ण गांव इस विकास में भाग लेना शुरू कर देगा तब स्थानीय सप्लाई की जरूरतों और उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करने वाले गैर-कृषि क्षेत्रों का विकास करना सरल होगा।

राष्ट्रीय सामुदायिक विकास संस्थान को सभी चार परि-

योजनाओं का बेंच मार्क सर्वे शुरू करने का कार्य सौंपा गया था। 1976-77 के लिए उड़ीसा, तमिलनाडु तथा उत्तर प्रदेश के राज्यों से ग्राम निवेश योजनाएं प्राप्त हुई थीं और उन पर केन्द्रीय स्वीकृति समिति द्वारा विचार दिया गया था और केन्द्रीय स्वीकृति समिति की सिफारिश पर उड़ीसा तथा तमिलनाडु परियोजनाओं को 1976-77 के लिए क्रमशः 4.35 लाख रुपए तथा 4 करोड़ रु० की धनराशि दी गई है।

कमजोर वर्गों का कार्यक्रम

ग्रामीण इलाकों में कमजोर वर्गों को आर्थिक विकास का लाभ पहुंचाने के लिए चौथी पंचवर्षीय योजना में आरम्भ की गई लघु किसान विकास एजेंसी/सीमान्त किसान तथा कृषि श्रमिक परियोजनाओं ने अपनी 5 वर्ष की परियोजना अवधि पूरी कर ली। तथापि, इन योजनाओं की अवधि को पांचवीं योजना के अंत तक बढ़ा दिया गया है। 87 परियोजनाओं में से 5 को बन्द कर दिया गया है और उन्हें कमांड क्षेत्र विकास परियोजनाओं के साथ मिला दिया गया है। इन कार्यक्रमों के पुनरुस्थापन के लिए राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिशों के अनुसरण में इन सभी परियोजनाओं को संयुक्त बना दिया गया और इनकी संख्या बढ़कर 160 हो गई जिनमें वर्तमान परियोजनाएं भी शामिल हैं।

छोटे किसानों के मामलों में मानदंड 5 एकड़ शुष्क भूमि और सीमान्त किसानों के मामले में 2.5 एकड़ शुष्क भूमि कर दिया गया है। इन सीमाओं के मुताबिक सिंचित भूमि का हिसाब एजेंसियों द्वारा भूमि की उच्चतम सीमा विधान में निर्धारित परिवर्तन गुणक के आधार पर लगाया जाता है। इन परियोजनाओं में मुख्य बल फसल रख रखाव पर दिया गया है जिसमें गहन कृषि बहु-शस्योत्पादन, अधिक उपज देने वाली किस्मों का प्रयोग करना, लघु सिंचाई का विकास, भू-संरक्षण, भूमि विकास आदि शामिल हैं। इनमें शुष्क भूमि खेती पद्धतियों तथा जल संरक्षण उपायों पर विशेष बल दिया जाता है।

इन एजेंसियों को पशुपालन प्रभाग की अन्य केन्द्रीय क्षेत्र की योजना के अन्तर्गत दुबारा प्रयास किए बिना एक सीमित पैमाने पर दुधारू पशुओं के वितरण, कुक्कुट, बकरी तथा भेड़-पालन, सूअर-पालन आदि जैसे सामान्य पशुपालन कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए प्राधिकृत किया गया है। लघु किसान विकास एजेंसी/सीमान्त किसान तथा कृषि श्रमिक परियोजनाओं के लिए कुल पांचवीं योजना प्रावधान 175 करोड़ रुपए रखा गया है।

पांचवीं योजना के दौरान लघु किसान विकास एजेंसी/सीमान्त किसान तथा कृषि श्रमिक परियोजनाओं को सलाह दी गई है कि वे परियोजना में कुल जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लघु तथा सीमान्त किसानों तथा कृषि श्रमिकों का पता लगाएं। पशु पालन कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रथम प्राथमिकता कृषि को दी जाएगी। यदि कृषि श्रमिकों की पर्याप्त संख्या उपलब्ध नहीं है अथवा वे इन कार्यक्रमों को आरम्भ करने के लिए आगे नहीं आते हैं तो सीमान्त किसानों और छोटे किसानों का पता लगाया जाएगा और उस प्राथमिकता के आधार पर उन्हें इन कार्यक्रमों को आरंभ करने में सहायता दी जाएगी।

1976-77 में भारत सरकार द्वारा अधिकांशतः सभी 160 लघु किसान विकास एजेंसी, सीमान्त किसान तथा कृषि श्रमिक परियोजनाएं मंजूर की गई थीं और उन्होंने उसी समय से कार्य करना शुरू कर दिया था। वर्ष 1976-77 में इन परियोजनाओं के लिए 27.50 करोड़ रुपए का बजट प्रावधान था और भारत सरकार ने 1976-77 के अन्त तक सम्पूर्ण धनराशि दे दी थी। यह धनराशि क्षेत्र में वित्तीय तथा भौतिक कार्य-निष्पादन पर आधारित थी। आरम्भ से लेकर कुल 112.79 करोड़ रुपए की धनराशि बांटी गई। वर्ष 1976-77 के दौरान एजेंसियां फरवरी 1977 के अन्त तक 22.25 करोड़ की धनराशि उपयोग में ला सकीं। एजेंसियों द्वारा परियोजनाओं के आरम्भ से लेकर कुल 106.18 करोड़ रुपए की धनराशि उपयोग में लाई गई।

वर्ष 1976-77 के दौरान फरवरी, 1977 तक एजेंसियों ने 26.33 लाख लघु तथा सीमान्त किसानों और कृषि श्रमिकों का पता लगाया था और उनमें से 13.11 लाख को सहकारी ढांचे में लाया गया। पहचाने गए भागीदारों में से लगभग 6.30 लाख भागीदार अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के थे और इनमें से लगभग 3.03 लाख को सहकारी सोसायटियों का सदस्य बनाया गया। इस वर्ष, इन एजेंसियों ने सहकारी सोसायटियों के माध्यम से 58.12 करोड़ रुपए तथा वाणिज्यिक बैंकों के माध्यम से 6.13 करोड़ रुपए के अल्पकालीन ऋण और सहकारी सोसायटियों के माध्यम से 29.32 करोड़ रुपए तथा वाणिज्यिक बैंकों के माध्यम से 16.95 करोड़ रुपए के निवेश ऋण जुटाए। इस सहायता से लगभग 123 हजार भागीदारों ने व्यक्तिगत अथवा सामुदायिक आधार पर लघु सिंचाई निर्माण कार्य शुरू किए थे। 80 हजार भागीदारों ने डेरी, 2232 भागीदारों ने कुक्कुटपालन तथा लगभग 32 हजार भागीदारों ने अन्य पशुपालन कार्यक्रम शुरू किए थे। इनके अलावा, लगभग 8.67 लाख भागीदारों को उन्नत कृषि तथा बागवानी के कार्यक्रमों के अन्तर्गत लाभ पहुंचाया गया।

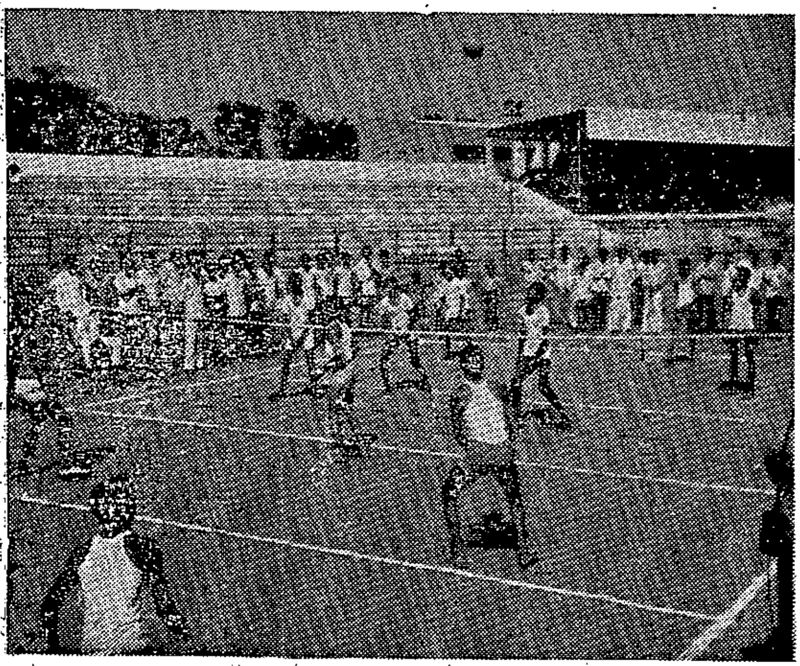

वालीबाल मैच का दृश्य

देहाती खेलों में दिल्ली ने मार्ग दिखाया

—हरिश वर्मा—

कबड्डी का जोरदार मुकाबला

भारत में खेलों के स्तर को लेकर बहुत कुछ कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताओं में हमारा स्थान बहुत से देशों, यहां तक कि छोटे देशों से भी नीचे रहता है। दुःख की बात है कि लगभग पचास करोड़ की आबादी में हमें थोड़े से भी ऐसे खिलाड़ी नहीं मिलते जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंच जाएं। इसके कई कारणों में एक प्रमुख कारण यह है कि हमारे देश में खेल मुख्यतः शहरों तक ही सीमित हैं, जबकि देश की 80 प्रतिशत जनता गांवों में रहती है। खेल विशेषज्ञ अब यह मानने लगे हैं कि जब तक छोटे कस्बों और गांवों में व्यापक रूप से खेलों का प्रचार नहीं होगा, तब तक खेल जगत में भारत अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप स्थान प्राप्त नहीं कर सकेगा।

प्रतियोगिता का जन्म

5 दिसम्बर, 1968 को दिल्ली के तत्कालीन मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री विजय कुमार मल्होत्रा के सद्प्रयासों के फलस्वरूप दिल्ली खेल परिषद का गठन किया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य राजधानी में खेलों को प्रोत्साहन देना था। परिषद ने स्थापना के बाद से ही देहात में बड़े पैमाने पर खेल कूद के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिए। दिल्ली का ग्रामीण क्षेत्र पांच सामुदायिक विकास खंडों में विभक्त है। इन सभी खंडों में खेलों को बढ़ावा देने के लिए खंड स्तर पर प्रतियोगिताएं आयोजित करने का निश्चय किया गया। खिलाड़ियों में उत्साह और होड़ पैदा करने के लिए नकद इनाम रखने का फैसला किया गया। फलस्वरूप दिल्ली की पहली देहाती खेल प्रतियोगिता 1969 में आयोजित की गई। इसमें खंड स्तर और अन्तर खंड स्तर पर कुश्ती, कबड्डी, वालीवाल, रस्साकसी, बैलगाड़ी दौड़ और स्त्रियों की मटकी दौड़ आदि सम्मिलित थीं। पांचों खंडों में समान रूप से खेलों के प्रचार के उद्देश्य को सामने रखते हुए इस प्रतियोगिता में कुश्ती के मुकाबलों का आयोजन अलीपुर में, कबड्डी का नजफगढ़ में, वालीबाल का महरौली में, रस्साकसी का

लड़कियों की खो खो प्रतियोगिता का दिलचस्प दृश्य

शाहदरा में और बैलगाड़ी का नांगलोई में हुआ। ग्रामीणों ने इन खेलों का हर्षोल्लास से स्वागत किया और न केवल उत्साहपूर्वक इनमें भाग लिया बल्कि बड़ी संख्या में उपस्थित होकर इन्हें देखा। इस पहली प्रतियोगिता में कुल मिलाकर खिलाड़ियों को लगभग 14,000 रु० के नकद इनाम दिए गए।

दिल्ली खेल परिषद अपनी पहली प्रतियोगिता की असाधारण सफलता से प्रेरित होकर और अधिक उत्साह से दूसरी देहाती खेल प्रतियोगिता की तैयारी में जुट गई। मार्च 1970 में खंड स्तर पर और नवम्बर, 1970 में अन्तर्खंड स्तर पर प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं। प्रथम प्रतियोगिता में सम्मिलित खेलों के साथ इस बार लम्बी दौड़, लम्बी कूद और शाटपुट (गोला फेंकना) भी सम्मिलित किए गए। पहले की ही तरह इस बार भी विजयी खिलाड़ियों को नकद इनामों से पुरस्कृत किया गया और तब से देहाती खेल कूद प्रतियोगिता का आयोजन हर साल होता आ रहा है।

दिल्ली की देहाती खेल प्रतियोगिताओं की चर्चा और प्रभाव दिल्ली तक ही सीमित नहीं रहा वरन सारे देश में इसकी सराहना की गई और इस प्रकार राजधानी ने सारे देश का मार्ग दर्शन किया। दिल्ली से प्रेरणा लेकर पटियाला स्थित राष्ट्रीय खेल संस्थान ने भी मार्च 1971 में राष्ट्रीय स्तर पर एक देहाती खेल प्रतियोगिता आयोजित की, जिसमें दिल्ली के अतिरिक्त आसाम, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर और उड़ीसा के ग्रामीण खिलाड़ियों ने भाग लिया। इस राष्ट्रीय प्रतियोगिता में भी वही खेल थे जो दिल्ली की ग्रामीण प्रतियोगिता में थे यानी कबड्डी, वालीबाल, रस्साकसी, कुश्ती और एथलेटिक्स।

इस वर्ष दिल्ली की ग्रामीण प्रतियोगिताएं माडल टाउन स्टेडियम में 13 से 15 अक्तूबर तक चलीं। इन प्रतियोगिताओं में 16 वर्ष तक की आयु के लगभग 250 लड़कों और 200 लड़कियों ने भाग लिया। विजेताओं को लगभग 50 हजार रुपए पुरस्कार के रूप में बांटे गए। विजेताओं में से अधिकांश लड़के-लड़कियां महरौली खंड के थे। लंबी कूद में प्रथम पुरस्कार शाहदरा खंड की कुमारी लिच्छी को और गोला फेंक का प्रथम पुरस्कार नांगलोई खंड की कुमारी सरोज बाला को दिया गया। 800 मीटर की दौड़ का पुरस्कार महरौली खंड की कुमारी कमलेश को दिया गया।

देहात में खेल कूद के प्रसार के लिए दिल्ली खेल परिषद ने जो ज्योति जलाई है, आशा है वह सारे देश को आलोकित करेगी और भारत के करोड़ों ग्रामीण युवक-युवतियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनेगी और हमें ऐसे खिलाड़ी प्राप्त हो सकेंगे जो खेलों के क्षेत्र में देश का नाम ऊंचा करेंगे। शीघ्र ही वह समय आ सकेगा जब हमारा यह स्वप्न साकार होगा और देहातों में खेलों की जड़ें पुष्ट हो जाएंगी। तब ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में राष्ट्र का सम्मान बढ़ाने वाले खिलाड़ी गुमनामी के अन्धकार से निकल कर सामने आएंगे और भारत खेल जगत में गौरवमय स्थान प्राप्त कर सकेगा। ●

रेलें आज देश के सामान्य नागरिक के दैनिक जीवन में इतनी घुलमिल गई हैं कि वह उनके न होने की कल्पना भी नहीं कर सकता । वास्तव में वह रेलों द्वारा प्रदत्त सेवाओं को अपना "मौलिक अधिकार" मानने लगा है। वह रेलों से आशा करता है कि सुबह-तड़के ही रेलें दूर-दराज क्षेत्रों से ताजे-फल, सब्जियां, मछली, दूध और अखबार उस तक पहुंचा दें । उसका यह भी विश्वास है कि रेलें उसके माल को शीघ्रातिशीघ्र देश के एक कोने से दूसरे कोने में भेज दें। इससे भी अधिक तो यह कि जब वह स्वयं यात्रा करना चाहे तो रेलें मधुर मुस्कान के साथ उसकी यात्रा आरामदेह और सुखद बनाने को प्रस्तुत रहें । रेलें अनेक वर्षों से उसके इस विश्वास को निभाती हुई अनेक कीर्तिमान स्थापित कर चुकी हैं। रेल सेवा का दूसरा पक्ष भी है। वह यह कि जिस क्षेत्र में गाड़ियों की संख्या पर्याप्त है, वहां और अधिक सुख-सुविधाओं की-मांग की शिकायत अधिकतर रहती है जैसे फलां दिन हमें रेल में आरक्षण नहीं मिला या खाना नहीं मिला । जिन क्षेत्रों में गाड़ियों की संख्या कम है वहां और गाड़ियां चलाने की बात अधिकतर उठाई जाती है। जहां गाड़ियां नाममात्र को हैं अथवा बिल्कुल नहीं हैं, वहां गाड़ी चलाने के लिए सर्वेक्षण कराने की बात रहती है।

केन्द्र में नई सरकार के गठन के पश्चात रेलों के काम में जो अभूतपूर्व सुधार हुए हैं, उनसे यह आशा बंधती है कि भविष्य में भी रेलें देशवासियों की आशाओं व आकांक्षाओं को समय रहते ही पूरा कर दिया करेंगी।

नए रेल मंत्री प्रो० मधु दंडवते ने पदभार ग्रहण करते ही 28 मार्च, 1977 को अंतरिम बजट प्रस्तुत करते समय यह घोषणा की कि 6 सप्ताह के भीतर मई 1974 में रेलवे हड़ताल के दौरान बरखास्त या निलंबित, सभी रेलकर्मियों को बहाल किया जाएगा । रेलों ने यह काम 6 सप्ताह के बजाय 4 सप्ताह में ही पूरा कर लिया। इसके अतिरिक्त इन सभी कर्मचारियों के विरुद्ध चल रहे मुकदमे, सजाएं (हत्या के आरोप में मुकदमा या सजा को छोड़कर) माफ कर दी गई। सभी कर्मचारियों की सेवा भंग की माफी, तबादलों को रद्द करना, वार्षिक वृद्धियां लगाने आदि का काम भी चार सप्ताहों में ही पूरा कर लिया गया। रेलवे को इन पीड़ित कर्मचारियों को बहाल करने और उनकी सजाएं माफ करने पर 1.32 करोड़ रुपये खर्च करने होंगे । परन्तु क्या उन सुखद घड़ियों का मूल्य इतना भी नहीं जब देश के 6000 से भी अधिक परिवारों के मुखिया गुनगुनाते हुए घर पहुंचेंगे, उनकी पत्नियां मधुर मुस्कान से उनका स्वागत करेंगी और उनके बच्चे आंगन में हंसते हुए नाचें-झूमेंगे।

जनसेवा में अग्रणी हमारी रेलें

सुभाष चन्द्र शर्मा

11 जून 1977 को रेल मंत्री प्रो० दंडवते ने यह घोषणा की जो सोने में सुहागा रही । उन्होंने कहा कि आपातस्थिति के दौरान जो लोग प्रभावित हुए थे उन्हें भी 6 सप्ताह के भीतर बहाल कर दिया जाएगा।

रेल मंत्री के इन प्रयासों से रेलों में औद्योगिक संबंधों का सुखद वातावरण बना है और रेलकर्मी अपने हितों को वर्तमान सरकार के हाथों सुरक्षित समझने लगे हैं । उन्होंने अपना काम नए उत्साह और जोश से करना आरम्भ किया है जिसके फलस्वरुप रेलों की कुशलता में इतनी अधिक वृद्धि हुई जितनी पहले कभी नहीं हुई थी।

माल यातायात में वृद्धि

रेलों ने वित्त वर्ष 1977-78 के पहले तीन महीनों में 5.29 करोड़ मीट्रिक टन राजस्व अर्जक माल ढोया। 1976-77 में इसी अवधि में इससे कहीं कम माल ढोया गया था । इस उपलब्धि को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि अप्रैल-जून, 1977 में रेलों ने इमर्जेंसी के व्यस्ततम तीन महीनों के रिकार्ड से भी 20 लाख टन अधिक माल देश के विभिन्न भागों को पहुंचाया।

दूसरे, पहली तिमाही में लदान निर्धारित बजट लक्ष्यों के अनुरूप रहा। इससे यह भी आशा बंधती है कि इस वर्ष रेलें न केवल 22 करोड़ मी० टन राजस्व अर्जक माल ढोने में समर्थ होंगी वरन 2.6 करोड़ मीट्रिक टन वह माल भी ढोएंगी जिस पर भाड़ा नहीं लिया जाता । यह सब होने पर रेलें माल यातायात के पांचवीं योजना के लक्ष्य को पाने से केवल 40 लाख मी० टन ही पीछे रहेंगी जबकि उसके पास पूरा एक वर्ष काम करने के लिए और होगा।

कच्चे माल के रूप में कोयला सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु है । कोयला घरेलू ईंधन के रूप में, कारखानों-मिलों, तापघरों, विद्युत गृहों में कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होता है। इस वर्ष के 3 महीनों में 1.74 करोड़ मीट्रिक टन कोयला ढोया गया । पिछले वर्ष इसी अवधि में यह परिमाण 1.58 करोड़ मीट्रिक टन था । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस दिशा में 10.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यहां यह लिखना अनुचित न होगा कि रेलें अपने इंजनों के लिए भी कोयला ढोती हैं। यदि यह भी उपरोक्त आंकड़ों में जोड़ा जाए तो इन महीनों में दैनिक औसत लदान 9758 माल डिब्बे बैठता है। पिछले वर्ष—इमर्जेंसी के दौरान—यह संख्या 9207 माल डिब्बे थी। आज यह स्थिति है कि रेलों को जितना भी माल लदान के लिए दिया जाता है वे उसे तुरन्त परिचालित करने में सक्षम हैं।

खाद्य वस्तुओं में गल्ला अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। अप्रैल-जून 1977 की अवधि में 41.5 लाख मीट्रिक टन गल्ला ढोया गया। यह संख्या गत वर्ष

की तुलना में स्पष्टतया अधिक है। इस वर्ष गल्ला परिचालन की यह विशेषता थी कि गल्ला बहुल क्षेत्रों से कमी वाले क्षेत्रों की ओर सीधे भेजा गया। दूसरे, जिन क्षेत्रों में आयातित खाद्यान्न सीधे बन्दरगाहों से भेजा जाता था वहां अब खाद्यान्न-बहुल क्षेत्रों से भेजा गया। इस प्रकार गल्ला परिचालन में विविधता आई। आज देश के किसी भी क्षेत्र में गल्ले की ढुलाई के लिए माल डिब्बे तुरन्त सुलभ कराए जाते हैं।

यात्री यातायात में वृद्धि

पिछले वर्ष अप्रैल-जून तक के महीनों में 79.3 करोड़ यात्रियों ने रेलों से सफर किया था। इस वर्ष 86.6 करोड़ यात्रियों ने यात्रा की। इस प्रकार इस तिमाही में 7.3 करोड़ अधिक यात्री रेल यात्रा का आनन्द उठा सके।

ऊपर की पंक्तियों में माल व यात्री यातायात में अप्रत्याशित वृद्धि से यह स्पष्ट है कि रेलों की आय में भी बढ़ोतरी होगी। 1977-78 वर्ष की पहली तिमाही में आय बजट अनुमानों से 16.28 करोड़ रुपए अधिक हुई। यदि इसकी तुलना गत वर्ष के आंकड़ों से करें तो यह वृद्धि 32 करोड़ रुपए होगी। अप्रैल-जून, 1977 तक रेलों को 541.41 करोड़ रुपए आय हुई, जबकि 1976-77 में इसी अवधि में 509.96 करोड़ रुपए हुई थी। इन्हीं आंकड़ों को देखते हुए इस वर्ष का बजट अनुमान 525.13 करोड़ रुपए रखा गया था। आय की इस गति को देखते हुए यह सम्भावना है कि पूरे वर्ष के लिए बजट में जो अनुमान है वह न केवल पूरा होगा वरन उससे भी अधिक आय होगी।

आय में वृद्धि के अतिरिक्त, कर्मचारियों द्वारा कुशलतापूर्वक काम करने के फलस्वरूप इन्हीं तीन महीनों में संचालन व्यय में बचत हुई है। इस अवधि में संचालन व्यय के रूप में 376.26 करोड़ रुपयों का प्रावधान किया गया था, परन्तु 362.18 करोड़ रुपए ही खर्च गए और इस प्रकार 14.08 करोड़ रुपए की बचत कर ली गई।

समय की पाबन्दी

इमर्जेंसी के दौरान व्याप्त भय के वातावरण से मुक्ति मिलने पर जन-साधारण में कुछ उन्मुक्तता आनी स्वाभाविक थी। इन सभी कारणों से कुछ क्षेत्रों में गाड़ियों की समय पाबंदी पर बुरा असर पड़ा। अप्रैल, 1977 के बाद इस दिशा में लगातार प्रयास करके और कड़ी निगरानी रखे जाने के फलस्वरूप गाड़ियों के समय पालन में सुधार होना शुरू हो गया है। जून, 1977 के अन्त में बड़ी लाइन पर 94 प्रतिशत गाड़ियां अपना समय पालन करती रहीं। इस दिशा में और भी प्रयास किए जा रहे हैं। समय पाबंदी में सबसे बड़ी बाधा खतरे की जंजीर का दुरुपयोग किया जाना है। इस सामाजिक अभिशाप का उन्मूलन करने के लिए छात्र संघों, राज्य सरकारों से विचार-विमर्श किया जा रहा है।

बेहतर सुविधाएं

नई जनता सरकार ने आते ही अपने नाम के अनुरूप साधारण जनता के दुख-दर्द कम करने के प्रयास चालू कर दिए हैं। रेल विभाग ने रेलों पर दूसरे दर्जे के यात्रियों को और अधिक सुविधाएं प्रदान करने का निश्चय किया है। अपने बजट भाषण में रेल मंत्री प्रो० दंडवते ने घोषणा की थी कि अब दूसरे दर्जे के शयनयानों में बैठने की सीटों पर तथा पीठ टिकाने के स्थान पर गद्दियां लगाई जाएंगी। हर डिब्बे में चार के स्थान पर छह शौचालय होंगे। शयनयान के प्रत्येक खंड में दो के स्थान पर तीन पंखे होंगे। प्रत्येक शयनयान में पीने के पानी की भी व्यवस्था होगी। इन सुविधाओं से युक्त एक नमूना-डिब्बा तैयार किया गया है। रेल मंत्री प्रो० दंडवते ने 6 अगस्त, 1977 को यह नमूना डिब्बा अपने मंत्रालय की सलाहकार समिति के सदस्यों को दिखलाया भी था। इस डिब्बे का डिजाइन अभी स्वीकृत होना है जिसके हो जाने पर ऐसे डिब्बों का बड़े पैमाने पर निर्माण शुरू किया जाएगा।

दो मंजिला डिब्बा

कम दूरी के यात्रियों को सुविधापूर्वक यात्रा कराने के उद्देश्य से दो मंजिले डिब्बे चालू करने का प्रस्ताव है। ऐसा ही एक नमूना-डिब्बा दक्षिण रेलवे पर परीक्षणाधीन है। सवारी डिब्बा कारखाना ऐसे ही डिब्बे और बना रहा है। दो मंजिले डिब्बे में 148 यात्री यात्रा कर सकते हैं जबकि सामान्य डिब्बे में 90 यात्री ही बैठ सकते हैं। ऐसे और डिब्बे आ जाने से रेलें यात्रियों की और अच्छी सेवा कर सकेंगी।

रेल मंत्री ने बजट भाषण में यह भी घोषणा की थी कि क्षेत्रीय रेल प्रशासनों को आदेश दिए जा रहे हैं कि वे योजना-बद्ध आधार पर स्टेशन प्रांगणों में प्रसाधन कक्षों और बेंचों की व्यवस्था करें और दूसरे दर्जे के यात्रियों के लिए स्टेशनों पर अतिरिक्त सुविधाएं जुटाएं। 1977-78 के बजट में स्टेशनों पर यात्रियों और अन्य उपयोगकर्ताओं के लिए सुविधाएं जुटाने के लिए विभिन्न रेलों द्वारा प्रस्तावित व्यय-राशि निम्न है :—

पश्चिमी रेलवे	:	22.12 लाख
द० मध्य रेलवे	:	27.68 लाख
द० पूर्व रेलवे	:	9.40 लाख
दक्षिण रेलवे	:	44.15 लाख
मध्य रेलवे	:	32.33 लाख
पूर्व रेलवे	:	65.22 लाख
उत्तर रेलवे	:	28.93 लाख
पूर्वोत्तर रेलवे	:	42.22 लाख
पूर्वोत्तर सीमा रेलवे	:	12.18 लाख

अपने बजट भाषण में रेल मंत्री ने यह घोषणा भी की थी कि भविष्य में लम्बी दूरी की सभी गाड़ियां "श्रेणी रहित" जनता गाड़ियां होंगी।

रेलों के कुछ यात्री रेलों से इतनी आत्मीयता स्थापित कर लेते हैं कि भविष्य में अपने-पराए का भेदभाव समाप्त कर देते हैं। फिर बिना टिकट यात्रा करते हैं। पिछले दिनों ऐसे 'आत्मीय' सज्जनों की धर-पकड़ने के अभियान में वृद्धि की गई है। अप्रैल से जून, 1977 के तीन महीनों में 25,971 छापे मारे गए। इन छापों में 5,77,753 व्यक्तियों को बेटिकट अथवा बिना उपयुक्त टिकट

के यात्रा करते हुए पकड़ा गया।

आरक्षण व्यवस्था में चुस्ती

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ महानगरों में आरक्षण व्यवस्था में समय-समय पर गड़बड़ी उभरती रहती है। रेलों ने इस दिशा में प्रयास कर कुछ निर्णय लिए हैं जिससे आरक्षण के मामलों में व्याप्त भ्रष्टाचार समाप्त होने के कुछ आसार स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। शीघ्र ही इस दिशा में और कठिन कदम उठाए जाएंगे ताकि भविष्य में ऐसी व्याधि फिर से न उभरे।

वास्तव में आरक्षण सम्बन्धी गड़बड़ियों के लिए यात्री व रेल कर्मचारी समान रूप से जिम्मेदार हैं। पहले तो यात्री-वर्ग कर्मचारी को ललचाकर उसे गलत काम करने को प्रेरित करते हैं, बाद में कहते फिरेंगे कि रेलों पर रिश्वत चलती है। रिश्वत लेने वाले और देने वाले दोनों ही जुर्मवार हैं। दूसरे यात्री वर्ग कभी-कभी स्पष्ट रूप से भ्रष्ट रेल कर्मचारी की सूचना प्रशासन को नहीं देते जिससे ऐसे कर्मचारियों के विरुद्ध कार्रवाई नहीं हो पाती। तीसरा एक अन्य कारण जो आरक्षण में धांधली मचवाने का कारण रहता है, वह यह कि किसी एक दिशा में यात्री वर्ग एक विशेष गाड़ी को बहुत चाहने लगता है। उदाहरण के लिए दिल्ली से दक्षिण की ओर जाने वाले प्रत्येक सज्जन जी० टी० एक्सप्रेस से यात्रा करना पसंद करते हैं चाहे उस दिन दक्षिण एक्सप्रेस में स्थान हो तो भी उसमें नहीं जाएंगे। इसी तरह पूर्व दिशा के लिए हावड़ा मेल, जम्मू के लिए श्रीनगर एक्सप्रेस और बम्बई जाने के लिए डीलक्स एक्सप्रेस को पहला और आखिरी नम्बर दिया जाता है। यदि यात्री वर्ग अपने व्यवहार में थोड़ा-बहुत संतुलन दिखाए और कुछ अन्य गाड़ियों को भी अपनी पहली पसंद के रूप में अपना ले, तो आरक्षण सम्बन्धी भ्रष्टाचार की गुंजाइश ही नहीं रह जाएगी।

कर्मचारियों के काम के प्रति उचित दृष्टिकोण और जन सामान्य के सहयोग से रेलें अत्यन्त सुगमतापूर्वक अपना काम कर सकेंगी। रेलों में और भी सुधार हो, इसके प्रति प्रशासन सचेत है। इस दिशा में पर्याप्त प्रयास भी किए गए हैं जिनके सुफल प्रकाश में आने लगे हैं। रेलों के माल व यात्री यातायात में वृद्धि, संचालन व्यय में 14.8 करोड़ रुपए की बचत आखिर किस दिशा की सूचक है। भविष्य में भी यह आशा की जा सकती है कि रेलें एक सेवा पूरक और उत्पादक संगठन के रूप में राष्ट्र सेवा में संलग्न रहेंगी। ●

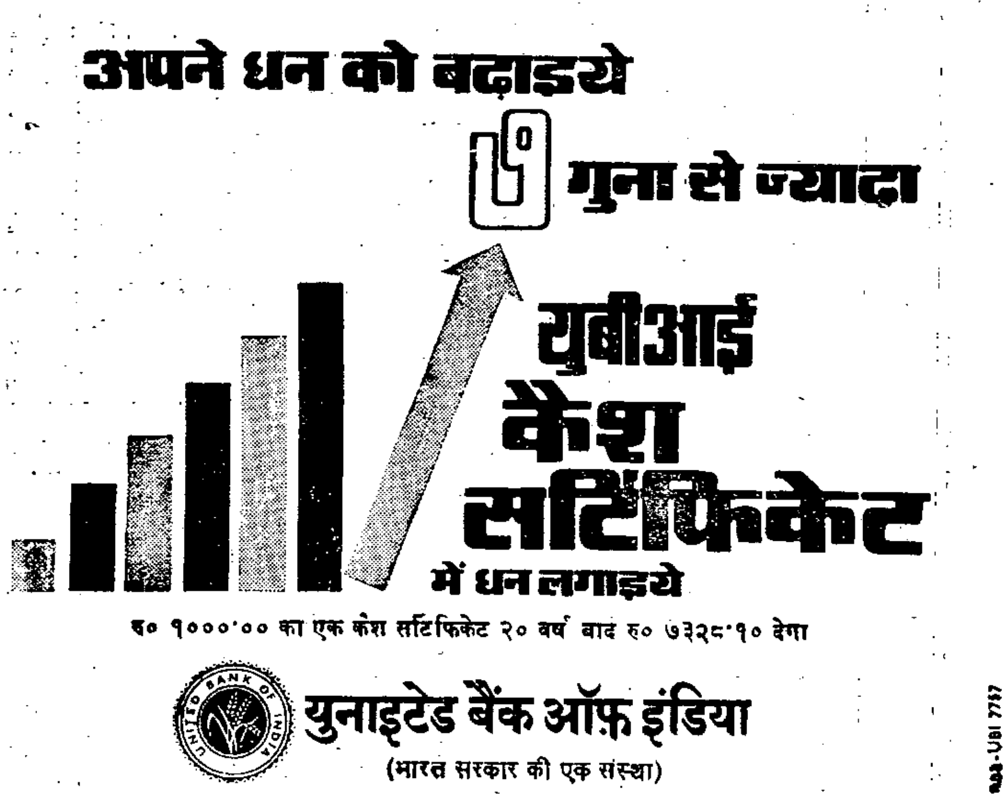

साहित्य समीक्षा

शहर में आखिरी दिन (कहानी संग्रह) : लेखक : देवेन्द्र उपाध्याय; प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; मूल्य : 7.00 रुपए

श्री देवेन्द्र उपाध्याय के इस कहानी संग्रह में उनकी सोलह कहानियां संकलित हैं। इनमें तीन-चार कहानियों को छोड़कर शेष कहानियां कलेवर में छोटी होने के बावजूद असर में पैनी और शैली में चुस्त कही जा सकती हैं। टूटा हुआ आदमी, टूटते हुए रिश्ते, उजड़ते हुए गांव, नैतिकता के नाम एक पाखंड में पलते हुए इन्सान, इन कहानियों के विषय हैं। समय को बदलने, आदमी के द्वारा आदमी के शोषण को समाप्त करने और तमाम टूटनों के बावजूद जीवन को भरपूर जीने की दृष्टि इन कहानियों को वास्तविक अर्थ में प्रगतिशीलता का स्पर्श देती है। **'वापसी'** कहानी में रवि के माता-पिता, शहर में बसे अपने लड़कों से उपेक्षा पाकर वापस अपने गांव में चाय की छोटी सी दुकान चला कर गुजर करने लगते हैं और यह महसूस करते हैं कि शहर और सड़कें उनकी धन दौलत ही नहीं उनके रिश्ते भी ले जाती हैं। **'महामारी'** कहानी गांव की विधवा रेवती की बेबसी की कहानी है, जिसमें रेवती प्रतिष्ठित व्यक्ति गांव के पुजारी की हवस का शिकार होने पर भी किसी को अपने निर्दोष होने का विश्वास नहीं दिला पाती क्योंकि गांव के तथाकथित प्रतिष्ठित लोग स्वयं महामारी के कीटाणुओं की तरह थे। हैजे की बीमारी से उजड़े एक गांव को पुनः बसाने, उसे मानव जीवन की चहल-पहल से पुनः सरसाने की भावना से प्रेरित होकर गांव की एकमात्र बची युवती का एकमात्र बचे बूढ़े पुरुष, जो उसका रिश्तेदार है, के साथ विवाह की कहानी है **'रिश्ते की वापसी'** जो फेंटेसी का स्पर्श लिए हुए है और एक प्रतीक कथा बन गई है। यह संग्रह की सर्वोत्तम कहानी है। इसी से मिलती जुलती कहानी **'एक और मुर्दा'** है जिसमें नदी में फेंकी गई लाशों से कान आदि से सोना निकालने वाले एक बूढ़े के जीवन का मार्मिक चित्रण है। बूढ़ा इसी कमाई से अपने बेटों को पढ़ाता-लिखाता है और बड़ा बनाता है, किंतु बेटों से उसे उपेक्षा मिलती है इस धंधे के कारण। **'मालू तू मालू न काट'** कहानी लोककथा पर आधारित है।

शहरी जीवन के प्रति वितृष्णा और ममता की ये कहानियां संक्षिप्त कलेवर के कारण प्रखर और प्रभावोत्पादक बन गई हैं और कुछ कहानियां तो अपनी अमिट स्मृति मन पर छोड़ जाती हैं। ●

डा० मस्तराम कपूर

'शोध-विशेषांक, शोध-पत्रिका : सम्पादक : डा० नत्थन सिंह; प्रकाशक: हिन्दी परिषद, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ; मूल्य : 5 रुपए।

समय के साथ-साथ हिन्दी-संसार में शोधकर्ताओं की संख्या बढ़ती जा रही है। उनकी समस्याएं और स्थितियों में भी पर्याप्त अन्तर आ रहा है। शोध-स्तर में इधर आई स्तरहीनता और विभिन्न मूल समस्याओं को लेकर प्रस्तुत किया गया 'शोध-पत्रिका' का शोध-विशेषांक एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

शोध-प्रविधि, हिन्दी-शोध, शोध का स्वरूप, शोधार्थी की व्यावहारिक कठिनाइयां, हिन्दी शोध साहित्य का गिरता हुआ स्तर, हिन्दी शोध-समस्या और हिन्दी काव्य-शास्त्रीय शोध आदि ऐसे लेख हैं जो शोध के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पहलुओं को प्रस्तुत करते हैं। साथ ही स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-समीक्षा:शोध, इतिहास एवं मूल्यांकन', 'हिन्दी निबन्ध: इतिहास, शोध, मूल्यांकन, सम्भावनाएं', 'हिन्दी में नाटक सम्बन्धी शोध: इतिहास एवं मूल्यांकन', 'लोक-साहित्य और हिन्दी-शोध' आदि वे महत्वपूर्ण निबन्ध हैं जो नवीन शोधार्थियों के लिए विशेष महत्व के हैं। इन निबन्धों में वह प्रेरणा पर्याप्त रूप से विद्यमान है जो नवीन शोध के लिए शोधार्थी में उत्साह उत्पन्न करती है। हिन्दी परिषद, मेरठ विश्वविद्यालय का यह प्रयास निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है। शोध के क्षेत्र में इस प्रकार के प्रयासों की आवश्यकता है, यह बात भी खुलकर सामने आती है। कुल मिलाकर यह एक संग्रहणीय अंक है। ●

महेश दर्पण

गांव की गोरी

गांव की गोरी मांग संवारे,
मोती भर-भर दोना।
हर खेत का कोना-कोना,
मिट्टी मेरा सोना।
हीरे पन्ने, चांदी रांगे,
धरती के सब लोना।
रेती से मोती उपजे,
मेहनत का यह टोना।
गर्म पसीने भू में रसें,
गंगा में जौ बोना।
गांव की गोरी मांग संवारे,
मोती भर-भर दोना।
हर खेत का कोना-कोना,
मिट्टी मेरा सोना।
मिट्टी तन है, मिट्टी धन है,
मिट्टी में है सोना।
इस मिट्टी का तिलक करो,
मिट्टी में है होना।
गांव की गोरी मांग संवारे,
मोती भर भर दोना।
हर खेत का कोना-कोना,
मिट्टी मेरा सोना।

बनवारी लाल ऊमर वैश्य

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1 द्वारा प्रकाशित और
केसर क्यारी इलैक्ट्रिक प्रेस, फरीदाबाद-121003 में मुद्रित।

Regd. No. D(D)/98

कश्मीर हस्त-शिल्प में अग्रणी : एक महिला ऊन तैयार करते हुए